अपना झारखंड

अपना झारखंड परिवार प्रकाशन अंक – 4, दिसम्बर 2010 सहयोग राशि : 5 रु0 मात्र

मुख्यमंत्री चाहिए की बयानबाजी छोड़ें, संविधान की पाँचवीं अनुसूची के प्रावधान लागू करें

हाल ही में राँची में सम्पन्न झामुमो कार्यकारिणी की बैठक में समता जजमेंट को लागू करने की मांग की गई। झारखंड मुख्यमंत्री अर्जुन मुंडा भी जमशेदपुर उपचुनाव में बुरी तरह पटखनी खाकर समता जजमेंट लागू करने की बात उठा चुके हैं। ये मुख्यमंत्री या उपमुख्यमंत्री इस प्रकार से मुद्दों को उठाते हैं मानो वे विरोधी दल के प्रतिनिधि हों। जब ये खुद सरकार हैं तो फिर प्रस्ताव या मांग किससे कर रहे हैं। उन्हें इन सवालों पर काम करना है, जनपक्षीय कानूनों को लागू करना है। इन नेताओं के इस प्रकार के रवैये से संदेह होता है कि क्या वास्तव में ये समता जजमेंट को जानते हैं भी या नहीं और अगर जानते हैं तो सचमुच लागू करना चाहते हैं या किसी खास समूह को डराना चाहते हैं। वैसे अकसर देखा गया है कि जब भी शासकों के सामने संकट खड़ा होता है तो उन्हें जनता के सवाल याद आने लगते हैं, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार अंधेरे में भूत-पिशाच से डरे आदमी को महावीर हनुमान की।

समता जजमेंट सर्वोच्च न्यायालय द्वारा 1997 में समता (एक संस्था) बनाम आंध्रप्रदेश के मामले में दिया गया एक महत्वपूर्ण फैसला है। इस फैसले के अनुसार 5वीं अनुसूची क्षेत्र में किसी भी निजी कंपनी (गैर-आदिवासी स्वामित्व वाली) को खनन पट्टा नहीं दिया जा सकता है। अगर कंपनी के लिए सहमति प्रदान करते हैं तो लाभ का 26 प्रतिशत हिस्सा प्रभावितों के बीच वितरित करना है। इस फैसले में एक अन्य बात यह थी कि 5वीं अनुसूची वाले 9 राज्यों में मुख्य सचिव की अध्यक्षता में एक समिति बनायी जाएगी जो संबंधित राज्य में उसके अमल के बारे में तय करेगी। परंतु 11 वर्ष बीत जाने के बावजूद झारखण्ड सरकारों, जिसमें सभी दलों की भागीदारी रही है, ने इस दिशा में कोई कदम नहीं उठाया है। जुबानी जमा-खर्च का बाजार ही गर्म है। अर्जुन मुंडा या हेमंत सोरेन को बयानबाजी करने से पहले समता जजमेंट को लागू करने के बारे में समिति गठित करनी चाहिए थी।

झारखण्ड में समता जजमेंट को लागू करने का मतलब होगा निजी कंपनियों को आवंटित सभी खदानों या फाइन्स के पट्टों को रद्द करना। क्या झारखण्ड सरकार का कोई कोना ऐसा करना चाहता है? क्या उसमें ऐसा करने का साहस और संकल्प है? क्या उसमें जनता और प्रकृतिक संसाधनों की रक्षा के लिए प्रतिबद्धता है?

आज सरकार का मुखिया वही है जिन्होंने 2005 में दूसरी बार सत्ता में आने पर एमओयू की झड़ी लगा दी थी। वे एक के बाद एक जिंदल, मित्तल, टाटा, एस्सार आदि के साथ हंसते-गाते-गले मिलते पूरे पृष्ठ के रंगीन विज्ञापन के साथ विकास की चकाचौंध फैला रहे थे। इन कंपनियों के लिए जमीन एवं खनन पट्टे देने का वादा किया गया और कुछ को दिया भी गया। विगत सरकारों द्वारा किये गये तमाम एमओयू रद्द करने की मांग की जा रही है, क्योंकि ये परियोजनाएं विकास से ज्यादा लूट की परियोजनाये हैं। प्रकृति के उपहार एवं वर्तमान एवं भावी पीढ़ियों के लिए संचित अमूल्य खनिज भंडारों को क्षुद्र स्वार्थ की पूर्ति के लिए विदेशों को धड़ल्ले से निर्यात एवं

तस्करी की जा रही है। सारंडा, किरिबुरु, बड़बिल आदि क्षेत्रों में दर्जनों माइंस अवैध रूप से चलाये जा रहे हैं। इन सबको बंद करने से सरकार को कौन रोक रहा है, यह गुत्थी समझ से परे है या एकदम अस्पष्ट है।

इसी प्रकार घोषणावीर मुख्यमंत्री की ओर से एक मन्तव्य आया है कि झारखंड में विस्थापित आयोग बनाया जाएगा। अगर ऐसा किया जाता है तो अच्छी बात होगी। केन्द्र सरकार द्वारा प्रस्तावित संशोधन भूअर्जन एवं पुनर्वास-पुनर्स्थापन विधेयक, 2011 के भाग IV की संस्थागत व्यवस्थाओं के संदर्भ में कहा गया है कि राज्य के स्तर पर पुनर्वास एवं पुनर्स्थापन आयुक्त नियुक्त किया जाएगा जो पुनर्वास अधिकारी के तौर पर कार्य करेगा। पुनर्वास पदाधिकारी या आयुक्त पर पुनर्वास योजनाएं बनाने और योजनाओं के उचित कार्यान्वयन की निगरानी करने की जिम्मेवारी होगी।

इसी प्रकार भाग VI(36) के अनुसार- "राज्य सरकार भूमि अधिग्रहण, मुआवजा, पुनर्वास एवं पुनर्स्थापन व्यवस्था से संबंधित विवादों के शीघ्र निपटान के लिए सरकारी राजपत्र में अधिसूचना जारी करके राज्य के लिए भूमि अधिग्रहण विवाद निपटान प्राधिकरण गठित करेगी।" इस प्राधिकरण द्वारा राज्य सरकार भूमि के अधिग्रहण के संबंध में इस अधिनियम के द्वारा या इसके तहत दिये गये क्षेत्राधिकारों, शक्तियों और प्राधिकारों का उपयोग करेगा।

सभी जानते हैं कि झारखंड एक विस्थापन ग्रस्त इलाका है। खनिज, कारखाना, बाँध, अभयारण्य, सैन्य संस्थान के लिए लोगों को उजाड़ना पड़ता है और उनके हितों की लगातार अनदेखी होती रही है। झारखंड बनने के बाद भी लोगों की हालत में कोई सकारात्मक फर्क नहीं आया है बल्कि स्थिति में गिरावट ही आयी है। इसलिए अगर सरकार की इन घोषणाओं के संदर्भ में विश्वसनीयता बचानी है तो तत्काल कुछ जरूरी कदम उठाने होंगे।

सुवर्णरेखा बहूद्देशीय परियोजना (सुबप) का प्रारंभ लगभग 32 वर्ष पहले हुआ था और अब इसका समापन कब होगा, कोई नहीं जानता। इस योजना के तहत चांडिल बाँध एकदम बन-ठनकर तैयार है, 116 गाँवों के 12 हजार परिवारों को पूरी तरह बेदखल करने के लिए। इस बार बाँध का जल स्तर 182.5 मी. तक जा पहुँचा। अधिकतम जल भंडारण का स्तर 192 मी. तथा पूर्ण भंडारण का स्तर 189 मी. है। अर्थात् बेदखली के बीच 6.5 मीटर का फासला है, फिर भी सरकार व परियोजना प्रशासन पुनर्वास के प्रति उदासीन है। विस्थापितों की एक मांग है कि 2003 में पुनरीक्षित पुनर्वास पैकेज को मूल्य सूचकांक के अनुसार बढ़ाया जाये। आज सरकारी कर्मचारियों को छठे वेतन आयोग के आधार पर वेतन में बढ़ोतरी की गई तथा प्रत्येक 3 महीने के अंतराल पर महंगाई भत्ता बढ़ाया जाता है। इतना ही नहीं, इसी परियोजना के अंतर्गत उड़ीसा क्षेत्र के विस्थापितों को 5 लाख 35 हजार रु. (आदिवासियों को 5 लाख 85 हजार रु.) का परिवारिक क्षतिपूर्ति पैकेज दिया जा रहा है जबकि सुबप का कुल पैकेज 1 लाख 89 हजार रु. का ही है। वृद्धि नहीं होने के चलते एक बड़ी संख्या ऐसे विस्थापितों की है तो पैकेज लेने से इंकार कर रहे हैं। झारखंड सरकार को घोषणाओं में मशगूल होने के बजाय चांडिल विस्थापितों के लिए पुनर्वास पैकेज को उड़ीसा के समान करना चाहिए।

इसके साथ ही एच.ई.सी., बोकारो स्टील आदि परियोजनाओं की जमीन को अन्य उद्देश्यों के लिए अंतरित करने पर रोक लगानी चाहिए। जमीन राज्य का मसला है तथा जमीन अधिग्रहण समवर्ती सूची में है। प्रस्तावित विधेयक 2011 में भी कहा गया है कि अगर 5 वर्ष तक अधिग्रहण के प्राथमिक उद्देश्य के लिए जमीन का उपयोग नहीं किया जाता है तो जमीन पूर्व भूधारक को चौथाई कीमत पर वापस कर दी जाए। झारखंड सरकार को उद्योग व खनन के लिए विभिन्न कंपनियों के साथ किये गये एमओयू को रद्द करना चाहिए तथा समता जजमेंट के क्रियान्वयन के लिए मुख्य सचिव की अध्यक्षता में समिति गठित करनी चाहिए।

सरकार एवं सरकार में शामिल दल अपनी जिम्मेवारियों को समझें और उनका पालन करें, न कि विरोधी दलों की तरह मांग करें और चाहिए की भाषा बोलें। सरकार का काम करना है, बातें बनाना नहीं।

- अरविन्द अंजुम

समता फैसले को पलट देने का प्रयास

सितंबर 1997 में उच्चतम न्यायालय ने आंध्र प्रदेश की 'समता' नामक संस्था द्वारा किये गये एक जनहित मामले में एक ऐतिहासिक फैसला दिया जिसमें यह स्थापित किया गया कि अनुसूचित क्षेत्रों में सरकारी जमीनें, आदिवासी जमीनें और वनभूमियां गैर-आदिवासियों, या खनन या औद्योगिक कार्यों के लिए निजी कंपनियों को पट्टे पर नहीं दी जा सकती हैं। इसके फलस्वरूप 5वीं अनुसूची में अनुसूचित क्षेत्रों में राज्य सरकारों द्वारा दिये गये सभी पट्टे अवैध हो गये। न्यायालय ने राज्य सरकार से खनन क्षेत्रों में लगे सभी उद्योगों को बंद करने के लिए कहा। ये खनन कार्य सिर्फ राज्य खनन विकास निगम या आदिवासियों की किसी सहकारी संस्था द्वारा ही चलाये जा सकते हैं, बशर्ते कि वे वन संरक्षण अधिनियम और पर्यावरण संरक्षण अधिनियम के प्रावधानों का पालन करें। उन खनन कार्यों से प्राप्त शुद्ध लाभ की कम से कम 20 प्रतिशत राशि अनुसूचित क्षेत्रों में स्वास्थ्य, शिक्षा, सड़क और अन्य सार्वजनिक सुख-सुविधाओं के लिए खर्चनी चाहिए। पेसा (पंचायत विस्तार अनुसूचित क्षेत्र अधिनियम) कानून बनने के बाद अब ग्रामसभा सामुदायिक संसाधनों का संरक्षण करने में सक्षम है। यह कहते हुए न्यायालय ने आदिवासियों के स्वशासन के अधिकार को दोहराया। जिन राज्यों में इसी प्रकार के अधिनियम अनुसूचित क्षेत्र में खनन पट्टों पर पूर्ण निषेध नहीं करते हैं उन राज्यों में मंत्रिमंडल उप-समितियां गठित करके न्यायालय के निर्णय के अनुरूप निर्णय लेने चाहिए और पट्टे देने के पहले राज्य सरकार को केंद्र सरकार से अनुमति लेनी चाहिए। तब उसके लिए केंद्र सरकार एक उप-समिति गठित करेगी जिसमें प्रधानमंत्री, कल्याण मंत्री और पर्यावरण मंत्री शामिल रहेंगे जो इस बात का ख्याल रखेंगे कि राज्य की नीति पूरे राष्ट्र की नीति के समनुरूप हो। साथ ही सभी मुख्यमंत्रियों और संबंधित मंत्रियों के सम्मेलन में बहस के बाद संसद उपरोक्त मार्गदर्शी सूत्रों की रोशनी में एक ऐसा कानून बनाने का निर्णय लेगा जिससे राष्ट्रीय खनिज संपदा वाले आदिवासी भूमियों के संदर्भ में एक समरूप योजना बने।

प्रधान सम्पादक
शंभू महतो एवं
सीताराम शास्त्री

सम्पादक मंडल :
मंथन
जसवा कच्छप
मदन मोहन
अरविन्द अंजुम
दिलीप वाहिनी
कपूर बागी
राजदेव राजु चन्द्रवंशी
सियाशरण शर्मा

सलाहकार मंडल
डा0 विशेश्वर प्रसाद केसरी
विनोद
संग्राम हेम्ब्रम
वनमाली महतो
शैलेन्द्र महतो
कुमार चन्द्र मार्डी
सोमा मुण्डा
डा0 खालिक अहमद
नलय राय एवं
डा0 रोज केरकेट्टा

केंद्र सरकार ने उच्चतम न्यायालय के आदेशों का पालन करने के बदले, आंध्रप्रदेश सरकार के साथ मिलकर इस निर्णय के खिलाफ अपील की जिसे उच्चतम न्यायालय ने खारिज कर दिया। इस प्रकार निजी एवं विश्वपूंजी के बेलगाम व्यावसायिक हितों और लूट को कानूनन अनुसूचित क्षेत्रों से दूर रखा गया।

फिर भी, वैश्वीकरण और उदारीकरण के माहौल में निजी और बहुराष्ट्रीय कंपनियों के दबाव में 10 जुलाई 2000 को केंद्रीय खनन मंत्रालय ने एक गुप्त नोट बनाया जो स्पष्टतः विदेशी कंपनियों के हितों को देश की जनता और आदिवासियों के हितों से अधिक महत्व देता है। नोट में उच्चतम न्यायालय के निर्णय में नुक्स निकालकर उसे चुनौती दी गयी और कानूनी सलाहकारों की मदद से यह सुझाव दिया गया कि उपयुक्त संशोधन करके उच्चतम न्यायालय के फैसले को पलटा जा सकता है। संविधान के अनुच्छेद 244 के खंड 5(2) का संशोधन करने का प्रस्ताव रखा गया। प्रस्ताव के अनुसार खंड 5(2) के बाद यह व्याख्या जोड़नी चाहिए - "पैरा 5(2) के तहत बनाये गये विनियम सरकार को आदिवासियों की या सरकार की जमीन को किसी गैर-आदिवासी को किसी गैर-कृषि कार्य के लिए देने से नहीं रोकेंगे।"

जब इस गुप्त प्रयास का पता लोगों को लग गया तो इसका बहुत विरोध हुआ। तब प्रयास को तत्काल के लिए रोक दिया गया। लेकिन एक तरफ कानून का खुलकर उल्लंघन हो ही रहा है, जैसे पूर्वी सिंहभूम जिले में भूषण, जिंदल और टाटा कंपनियां अनुसूचित क्षेत्रों में कारखाना लगाने की प्रक्रिया जारी रखी हुई हैं और जिला प्रशासन कंपनियों के हित में मदद कर रहा है; और तुक्का यह कि हाइकोर्ट ने कंपनियों को सस्ते में जमीन देने का आदेश भी दिया है। और दूसरी तरफ 5वीं अनुसूची के प्रावधानों में संशोधनों के प्रयास भी लगातार जारी हैं।

पलायन रोकना होगा, गांवों के समग्र विकास के लिए लड़ना होगा

1864 ई० में अंग्रेजों द्वारा जंगलों पर कब्जा कर लिये जाने के समय से इन करीब 150 वर्षों में झारखंड से लगातार लोगों का पलायन जारी है। भारत के आजाद होने और अलग झारखंड राज्य बनने के बावजूद पलायन जारी है। क्यों? झारखंडी जनता की मुख्य और बुनियादी समस्या है विस्थापन और भूमि रक्षा कानूनों के उल्लंघन के चलते जमीनों-जंगलों से बेदखली और ग्रामांचल का विकास न होना। इन 150 वर्षों में जो भी सरकारें झारखंड क्षेत्र पर शासन करती रहीं उनका लक्ष्य हमेशा झारखंड के संसाधनों का दोहन करना और दोहन करने वाले पूंजीपतियों की मदद करना रहा है। इसी लक्ष्य को साधने के लिए झारखंडियों की बेदखली और ग्राम विकास की उपेक्षा होती रही।

बिरसा, सिदू-कानू और अन्य क्रांतिकारी नेताओं के नेतृत्व में झारखंडी जनता ने अपनी जमीनों और जंगलों पर कब्जा और अधिकारों को कायम रखने के लिए लड़ाइयां की जिनके असर से अंग्रेज सरकार को सी एन टी एक्ट और एस पी टी एक्ट बनाने पड़े, और बाद में आजाद भारत की सरकार ने संविधान में अनुसूचित क्षेत्रों के लिए विशेष प्रावधान किये। लेकिन भूमि अधिग्रहण कानून द्वारा तथा इन कानूनों में विभिन्न संशोधन करके सरकारें इन कानूनों को कमजोर करती रहीं जिसके फलस्वरूप झारखंडी जनता की लाखों एकड़ जमीन बाहरी लोगों के हाथों में चली गयी; झारखंडी लाखों की संख्या में झारखंड से पलायन करते रहे; और उससे भी अधिक संख्या में बाहर से लोग आकर यहां बसते गये और झारखंडी जनता की जमीनों और अन्य संसाधनों पर कब्जा करते गये। और यह सिलसिला आज भी बेरोक जारी है।

इस तरह आजाद भारत में, अलग झारखंड राज्य बनने के बाद भी, झारखंड एक आंतरिक उपनिवेश बना हुआ है। झारखंड राज्य में सत्ता में आये हुए दल और व्यक्ति झारखंडियों के संसाधनों को हड़पने वालों के फायदे के लिए ही काम कर रहे हैं। वे पहले की सरकारों की ही तरह सी एन टी एक्ट का खुल्लमखुल्ला उल्लंघन होने देते रहे। इतना ही नहीं, शासक दल कभी खुलकर तो कभी छिपकर सी एन टी एक्ट को खतम करने या बेअसर करने में लगे हैं। खासकर गांवों से कटकर शहरों एवं पूंजीपतियों के हितों के साथ जुड़े इन दलों के नेता लोगों से यह कहते घूमते हैं कि सी एन टी एक्ट खतम होने से जमीन बाहरी लोगों को बेच सकोगे, ज्यादा पैसा मिलेगा; गांव में क्या रखा है? खेती में क्या रखा है? कुल मिलाकर ये नेता झारखंडियों के पलायन को तेज करने के लिए हवा बना रहे हैं। और गांवों में दूर-दूर तक घुसकर पैसे वाले जमीन हड़पखोर धंधेबाज सस्ते में जमीनें खरीदते जा रहे हैं।

सरकार की नीति उद्योगों और शहरों तथा उद्योगों के हित में आधारभूत ढाँचा के विकास को प्राथमिकता देने की नीति है। इस नीति के चलते झारखण्ड में बाहर से उद्योगपतियों, व्यापारियों, ठेकेदारों और इन सब के लिए काम करने वाले कर्मचारियों का आगमन होता रहा है। इनके निर्माण कार्यों और अन्य गतिविधियों के लिए गाँव से पलायन किये हुए सस्ते मजदूर मिलते हैं। इन मजदूरों को बस अधिकतर अकुशल ठेकेदार मजदूर का काम या बेहद कम मजदूरी वाली नौकरियाँ मिलती हैं। शहरों और औद्योगीकरण के विकास के लिए सस्ते मजदूर और सस्ती जमीन जरूरी है। गाँव का विकास नहीं होने के चलते शहरों और कारखानों को मजदूर और जमीनें सस्ते में मिलती हैं। इसीलिए सरकार की औद्योगीकरण को प्राथमिकता देने की नीति के लिए यह जरूरी होता है कि गाँव का विकास मत करो।

यह तो ऐसी ही बात हुई कि किसी के घर को चारों तरफ से घेर दिया और उसको पानी, बिजली और दूसरी सुविधाओं का मिलना रोक दिया ताकि वह थक-हारकर थोड़े-से पैसे लेकर घर छोड़ दे। झारखंडी जनता के साथ सौ साल से यही होता रहा है। उनके जंगलों को छीनकर और गांवों के विकास को अवरुद्ध करके लोगों को पलायन के लिए मजबूर करने की नीति चलायी जाती रही। जहां

गांवों में खेती के विकास के लिए सिंचाई की व्यवस्था न हो, यातायात और बिजली की सुविधाएं न हो, बच्चों के लिए पढ़ाई की अच्छी व्यवस्था न हो, बीमारों के इलाज की व्यवस्था न हो तो लोग गांव छोड़ने के लिए मजबूर होंगे ही! गांवों की उपेक्षा करने की नीति का यही नतीजा होगा, और बाहर से पैसे वाले आकर जमीनें और दूसरे संसाधन हड़पेंगे।

गाँव के लोगों को जमीनों से बेदखल करने और पलायन के लिए मजबूर करने वाली सरकार की नीति को झारखंडी क्यों मानें? क्यों उस नीति को मान कर पलायन करते जायें? क्यों यह मान लें कि गाँव में और गाँवों का कोई भविष्य नहीं है? क्यों यह मान लें कि गाँव में पढ़ाई और इलाज की व्यवस्था हो ही नहीं सकती? क्यों यह मान लें कि गाँव में खेती और अन्य ग्रामीण उत्पादन विकसित नहीं हो सकते? कोई आपको पलायन के लिए मजबूर करेगा तो क्या आप पलायन कर जायेंगे?

हमारे सामने सवाल है कि हम गांव में रहकर गांव के बहुमुखी विकास के लिए संघर्ष करें या इस झारखंडी विरोधी नीति के सामने आत्म-समर्पण करके भाग जायें और इस तरह अपनी भूमि की रक्षा के लिए बने सी एन टी एक्ट को खतम करने में जमीन हड़पखोरों का साथ दें। झारखंड के दुश्मनों द्वारा 80–90 साल से लगातार प्रचारित की जा रही जन-विरोधी नीति से लोगों के दिमाग में यह शंका पैदा कर दी गयी कि क्या गांवों का ऐसा विकास हो सकता है कि गांव में हमारा अच्छा भविष्य हो।

झारखंड के गाँवों का विकास हो सकता है और खूब हो सकता है। भारत के पूर्वोत्तर और पश्चिमी तट के इलाकों को छोड़कर बाकी सब जगह से ज्यादा वर्षा यहाँ होती है। अगर सरकार गाँव के विकास की नीति को प्राथमिकता दे तो झारखंड के गाँवों के विकास की भारी संभावनाएँ हैं। गांवों में शिक्षा और स्वास्थ्य सेवाओं की अच्छी व्यवस्था क्यों नहीं हो सकती है? क्या देश के लिए खाना जुटाने वाले ग्रामीण बड़े शहरवासियों के समान नागरिक नहीं हैं? क्या वे दूसरे दर्जे के नागरिक हैं? ऐसी व्यवस्था संभव है, दूसरे राज्यों और देशों में गांवों के लिए ऐसी व्यवस्था की जा सकी है।

यहां सात-आठ प्रतिशत से ज्यादा सिंचाई की व्यवस्था नहीं है। झारखंड में कई बड़े बाँध हैं जिनको बनाया तो गया था सिंचाई के झूठे वादे पर लेकिन वास्तव में शहरों और कारखानों को पानी देने के लिए ये बाँध बनाये गये। ऐसी स्थिति में खेती का बहुत कम विकास हो पाया। खेती अधिकाधिक पूंजीपतियों द्वारा नियंत्रित बीजों, रासायनिक उर्वरकों, रासायनिक कीटनाशकों, मशीनों, ऋण-व्यवस्था पर निर्भर होती जा रही है। इन परिस्थितियों में झारखंड में अच्छी तरह खेती संभव नहीं है। जो होती भी है वह महंगी होती है। इसी परिस्थिति को दिखाकर बताया जाता है कि यह इलाका खेती के उपयुक्त नहीं है।

1400 मिलीमीटर की औसत वार्षिक वर्षा झारखंड में होती है जो पड़ोसी राज्यों से अधिक है। जलागम (जलछाजन क्षेत्र विकास) पद्धति से जल संरक्षण करने और मिट्टी में नमी बनाये रखने की व्यवस्था की जाये और झारखंड के बहुत सारे बांधों का पानी लिफ़्ट इरिगेशन द्वारा खेतों में पहुंचाया जाये तो झारखंड के गांवों में साल भर कोई न कोई उपयोगी फसल हो सकती है। गाय-भैंस, भेड-बकरी, मुर्गी-बत्तख पालन, मछलीपालन, मधुमक्खी पालन, कुकुरमुत्ता (मशरूम) आदि द्वारा व्यापक पैमाने पर खाद्य उत्पादन किया जाये; बागवानी और कृषि-वानिकी का व्यापक प्रयोग किया जाये; वन विभाग वनों के विकास को कृषि विकास के साथ जोड़े और व्यापक जल-संरक्षण करे; सड़कों और परिवहन का पूरा विकास किया जाये; वनोपजों पर झारखंडी जनता को पूरा हक दिया जाये; ग्राम विकास के लिए आधारभूत ढांचे के रूप में बिजली, व्यापक कृषि शिक्षण-प्रशिक्षण केंद्रों, कृषि प्रयोगशालाओं, बाजार व्यवस्था, शीतगृहों, कृषि ऋण एवं कृषि बीमा आदि की व्यवस्था की जाये, और इसके अलावा, व्यापक पैमाने पर कुटीर, लघु और आनुषंगिक उद्योगों का जाल ग्रामांचल में बिछाया जाये तो झारखंड में भोजन, रोजगार और पूंजी का बड़े पैमाने पर सृजन होगा जिसका सीधा फायदा ग्रामीणों को तो मिलेगा ही बल्कि शहरों और पूरे देश को भी फायदा होगा। तब यहां से पलायन करने की बात कोई सोचेगा भी नहीं। पचास लाख रुपये प्रति एकड़ देने से भी लोग अपनी जमीनें बेचना नहीं चाहेंगे। आज गांवों में जमीनें 50,000

रु० से लेकर 5–6 लाख रु० प्रति एकड़ बिक रही हैं (हाइवे की जमीनों का मामला अलग है)। अगर ऊपर बताये ढंग से झारखंड के गांवों का विकास किया जाये तो सालाना 2 से 5 लाख रुपये प्रति एकड़ आमदनी हो सकती है। तो फिर क्यों जमीन कौडियों के मोल बेचें! आखिर इन जमीनों से पीढ़ी-दर-पीढ़ी फायदा मिलता ही रहेगा! जी हां! यह सब संभव है! ऐसा दूसरे राज्यों में खूब हुआ है। अगर यहां लोग अपना सोच बदलें, सरकार अपनी नीति बदले तो यह संभव है!! अगर लोग गांवों से पलायन करना छोड़कर गांवों के विकास को प्राथमिकता देने की नीति के लिए लड़ें तो यह संभव है।.

एक एकड़ तालाब में वैज्ञानिक ढंग से मछलीपालन किया जाये तो उससे साल में एक से तीन लाख रुपये की शुद्ध आय हो सकती है, बशर्ते कि सरकार मदद करे। लगभग मुफ्त में झारखंड का लोहा, कोयला, पानी, जमीन और दूसरे संसाधनों का इस्तेमाल करके टाटा कंपनी ने लाखों करोड़ों रुपये कमाये हैं, दुनिया भर में अपने पूंजी के साम्राज्य का विस्तार किया है। अगर टाटा सिर्फ दस एक्सकवेटर झारखंड के गांवों को दे दे तो पूरे झारखंड में थोड़े ही समय में ऐसे तालाबों की भरमार हो सकती है। क्या हम इसके लिए लड़ेंगे?

झारखंड बनने के बाद मंत्री एवं मुख्यमंत्री भले ही झारखंडी मूल के लोग बने हैं लेकिन उनका काम और नीति तो झारखंडी जनता के हितों के खिलाफ ही है। सिद्धांतहीन ढंग से विभिन्न झारखंडी दलों के नेता धड़ाधड़ दल बदलते हैं और पैसे पर बिकते हैं। पैसे वालों से पैसा लेकर चुनाव जीतते हैं और उन्हीं के लिए काम करते हैं। पूँजीपतियों के प्रतिनिधियों को राज्यसभा का सदस्य बनाने के लिए अपना वोट बेचते हैं। और यह सब खुल्लम-खुल्ला होता है। सिर्फ पैसे के लिए कंपनियों, ठेकेदारों, बिल्डरों और धंधेबाजों के हित में राजनीति करने वालों से आप कभी उम्मीद नहीं कर सकते कि वे गाँव के विकास की नीति अपनायेंगे।

यहां इस बात को भी ध्यान में रखना होगा कि एक तरफ जहां झारखंडी जनता को आक्रामक शक्तियों का हथियारबंद संघर्षों द्वारा सामना करके अपने अस्तित्व को बचाना पड़ा, दूसरी तरफ जंगलों के छिन जाने और कट जाने के चलते, लगातार जमीनों के छिनते जाने के चलते और बाहरी आबादी के दबाव के कारण झारखंडी जनता ने आजीविका की अपनी पहले की अर्थ-व्यवस्था खो दी। हजारों वर्षों की प्रक्रिया में नदी घाटी इलाके की जनता ने जिस रूप में कृषि व्यवस्था विकसित की उसे यहां चंद वर्षों में अपनाने के लिए झारखंडियों पर दबाव पड़ा। एक पूरी जनता के लिए नयी उत्पादन व्यवस्थाएं अपनाना आसान नहीं है। लेकिन इतिहास में पीछे भी तो यथावत् नहीं लौटा जा सकता है। यह भी संघर्ष है। दुश्मनों की ग्रामविकास-विरोधी नीति के खिलाफ लड़ने के साथ-साथ अपने भौगोलिक क्षेत्र और अपनी जरूरतों के मुताबिक नयी उत्पादन व्यवस्था विकसित करना होगा। यह भी अपने अस्तित्व को बचाने के लिए एक और चुनौती है। एक वैकल्पिक उत्पादन-व्यवस्था विकसित करने के लिए अभियान चलाना पड़ेगा।

हमें वैकल्पिक उत्पादन-व्यवस्था के लिए इस अभियान के साथ-साथ सरकार की नीति के खिलाफ भी लड़ना होगा जो हमें उस ओर बढ़ने नहीं देना चाहती है? हमें गाँव के विकास को प्राथमिकता देने की नीति के लिए लड़ना होगा। गाँव में उत्पादन के विकास के लिए जरूरी आधारभूत व्यवस्था विकसित करने के लिए लड़ना होगा। आदिवासियों को बैंक से कर्ज के लिए लड़ना होगा; शहर जैसी शिक्षा और स्वास्थ्य सेवाओं के लिए लड़ना होगा। आखिर झारखंड बना किसलिए? 94 प्रतिशत झारखंडी मूल की जनता गाँव में रहती है। उन गाँवों का ही विकास न हो तो फिर इस विकास का झारखंडियों के लिए क्या मतलब है? हमारे भविष्य का विकास हमे यहीं करना होगा। हमारे पलायन के लिए रची गयी साजिश का शिकार न होकर हमे अपनी जमीनों की रक्षा करनी होगी; अपनी जमीनों की रक्षा के लिए बने सी एन टी एक्ट, एस पी टी एक्ट और संविधान की पांचवीं अनुसूची के प्रावधानों को सख्ती से लागू करने के लिए लड़ना होगा। भागना नहीं, झारखंड को बदलना है। भागना नहीं, लड़ना है!

– सीताराम शास्त्री

प्रस्तावित भूमि अधिग्रहण कानून की समीक्षा

मानव सभ्यता कभी भी विकास का विरोधी नहीं हो सकती। लेकिन यह भी सत्य है कि हर शोषण-दमन विकास शब्द के पीछे-पीछे छुपकर आता है। इसका अर्थ यह नहीं कि हर विकास शोषण-दमन को ही लायेगा। औपनिवेशिक काल में ब्रिटिश हुकूमत ने "विकास" को अंजाम देने के नाम पर भूमि अधिग्रहण कानून, 1894, लाया था। अंग्रेजों द्वारा भारत छोड़े 64 साल बीत गये, लेकिन उक्त कानून में कोई विशेष (मौलिक) परिवर्तन नहीं हुआ। स्वाभाविक है कि यह औपनिवेशिक कानून भारत के किसानों के छाती पर 6 दशकों से भी ज्यादा समय से मूंग दलता रहा है। लेकिन कलिंगनगर, नन्दीग्राम, सिंगुर, जगतसिंहपूर, सिंहभूम समेत पूरे झारखंड और देश के किसानों ने अपने बलिदानों और संघर्षों से सरकार को इस दमनात्मक कानून को वापस लेने के लिए बाध्य कर दिया। यह किसानों के संघर्ष की जीत है। देश के शासक वर्ग और उनकी सरकार यह समझ गयी है कि अब पुराने तरीके से किसानों की जमीन नहीं छीनी जा सकती है। इसलिए 2006 से एक नये भूमि अधिग्रहण कानून का दस्तावेज तैयार हो रहा है। इस प्रस्तावित दस्तावेज को जुलाई 2011 से बहस के लिए प्रसारित किया गया है। इसका नाम "भूमि अधिग्रहण और पुनर्वास एवं पुनर्स्थापन विधेयक-2011" रखा गया है।

यह विधेयक भारत सरकार के ग्रामोन्नयन मंत्रालय द्वारा 26 जुलाई 2011 को देशवासियों के समक्ष विचार-विमर्श एवं सुझावों के लिए रखा गया है। यह विधेयक सिर्फ 100 एकड़ या उससे अधिक भूमि के अधिग्रहण के मामले में ही प्रभावित होगा; 100 एकड़ से कम जमीन के अधिग्रहण करने पर यह प्रभावी नहीं होगा। साथ ही यह भी साफ है कि कृषि और जमीन का विषय राज्य सरकार के अधीन है। जहाँ तक भूमि अधिग्रहण का सवाल है, यह राज्य और केन्द्र दोनों की सूची में अंतर्भूत है। विधेयक को ग्रामोन्नयन मंत्रालय दो भागों में बांटता है- एक है भूमि अधिग्रहण और दूसरा है पुनर्वास एवं पुनर्स्थापन। मंत्रालय के अनुसार ये दोनों भाग एक दूसरे के परिपूरक हैं। इस विधेयक के अनुसार अगर सरकार 100 एकड़ या उससे अधिक जमीन अपने पास रखना चाहेगी तो वह अपने व्यवहार के लिए इस विधेयक के तहत रख सकती है। बाद के दिनों में सरकार इस जमीन को निजी मालिकों के हाथ भी सौंप सकती है यदि वे इसका इस्तेमाल जनहित में करना चाहें। सरकार ने जनहित को परिभाषित करते हुए कहा है कि इसमें आधारभूत संरचना, शिल्पायन, नगरायन जैसे राष्ट्रीय पथ निर्माण, राष्ट्र पूँजी और व्यक्तिगत पूँजी का संयुक्त प्रकल्प (PPP project) इत्यादि आते हैं। व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए किसी उद्योगपति को जमीन नहीं दी जा सकेगी और न ही बहुफसली जमीन का अधिग्रहण किया जा सकेगा। संक्षेप में भूमि अधिग्रहण से संबंधित प्रस्तावित विधेयक यही है।

इस प्रस्ताव का दूसरा अंश मुआवजा और पुनर्वास से संबंधित है जिसके दो भाग हैं। पहला जिनकी जमीन अधिग्रहीत हो रही है और दूसरा जिनकी आजीविका चली जा रही है। उक्त दोनों वर्ग ही 'क्षतिग्रस्त वर्ग' हैं। विधेयक के अनुसार 1899 साल के स्टाम्प कानून के तहत जमीन बिक्री की दलील में उल्लेखित न्यूनतम दाम या संबंधित अंचल या निकटवर्ती अंचल में उसी प्रकृति (ढ़ंग) की जमीन की औसत कीमत को बाजार दर माना जायेगा। ग्रामीण क्षेत्रों में अधिगृहीत जमीन की बाजार दर का तीनगुना और अगर जमीन में कोई घर, पेड़, कुँआ-बोरिंग, फसल इत्यादि हैं तो उनकी कीमत भी जोड़कर जो योगफल होगा वही मुआवजा माना जायेगा। इसके साथ ही पुनर्वास का पैकेज हर जमीन दाता परिवार को एक साल तक 3 हजार रुपया महीना तथा 20 साल तक 2 हजार रुपया की दर से मूल्य सूचकांक के साथ तालमेल रखकर दिया जायेगा। इसके अलावा यदि जमीन दाता अधिग्रहण के कारण घर विहीन हो गये हों तो उन्हें ग्राम अंचल में 150 वर्ग मीटर अथवा शहरी क्षेत्र में 50 वर्ग मीटर जमीन घर बनाने के लिए दिया जायेगा। इस पैकेज के अंतर्गत परिवहन की व्यवस्था की जायेगी। इस पैकेज के अंतर्गत परिवहन के लिए एक मुश्त 50,000 रु. भी मिलेगा। सिंचाई परियोजना के लिए जमीन अधिगृहित होने पर एक एकड़ सिंचित जमीन भी खेती के लिए दी जायेगी। अगर

शहरीकरण के लिए जमीन अधिगृहीत की जायेगी तो जमीन मालिक 20 प्रतिशत उन्नत जमीन अपनी अधिगृहित जमीन के अनुपात में पाने के हकदार होंगे। साथ ही विधेयक में जमीन दाता परिवार के एक व्यक्ति को नौकरी दी जायेगी या एक मुश्त 2 लाख रुपया दिया जायेगा। कुल मुआवजा का 25 प्रतिशत तक अधिगृहीत जमीन पर निर्मित कम्पनी में शेयर प्रदान करने का आश्वासन भी इस विधेयक में है।

जमीन दाता के अलावा जमीन अधिग्रहण के कारण रोजगार खोने वालों के लिए भी मुआवजा की घोषणा इस विधेयक में है। भूमिहीनों को नया रोजगार आरंभ करने के लिए सिर्फ एकमुश्त 50,000 रु. पुनर्स्थापन भत्ता मिलेगा। इस विधेयक में यह भी प्रावधान है कि जमीन दाताओं में अगर रोजगार से वंचित होने वाले अगर जनजाति के हों तो उन्हें कुल मुआवजा का तृतीयांश एक मुश्त ही दिया जायेगा।

नये प्रस्तावित विधेयक को पुराने 1894 के कानून की तुलना में थोड़ा मानवीय बनाने का प्रयास किया गया है। इस विधेयक को लाने का कारण साफ है कि पुराना विधेयक बदनाम हो चुका था और उससे औपनिवेशिक गंध भी आ रही थी। और दुनिया भर में चल रहे आर्थिक संकट से निपटने के लिए विकसित देश विकासशील देश में अपनी पूंजी निवेश करना चाहते हैं। लेकिन देश के किसान जगह-जगह भूमि अधिग्रहण के खिलाफ संघर्षरत हैं। इसलिए इस नये बिल के प्रस्ताव के साथ सरकार किसानों और देश के बुद्धिजीवियों को रिझाने का प्रयास कर रही है। सनद रहे कि पूँजी निवेश के लिए अर्द्धसामंती व्यवस्था वाले हमारे जैसे देश की सस्ती जमीनें, कच्चा माल और सस्ते मजदूर, पूँजी निवेश को आकर्षित करते हैं लेकिन यहाँ की लचर आधारभूत संरचना (सड़क, बिजली, बड़े-बड़े जलाशय, बंदरगाह) निवेश को हतोत्साहित भी करती है। इसलिए शहरी वर्ग और सरकार इस विधेयक के माध्यम से इस आधारभूत संरचना को बदल डालने का कोशिश करेगी। इस तरह के विकास के लिए जमीन की आवश्यकता है और जमीन या तो खुले बाजार से दर-दाम करके खरीदना पड़ेगा या अधिग्रहण करना होगा। दर-दाम करके खरीदने में अनिश्चितता है लेकिन अधिग्रहण में निश्चितता है।

झारखंड समेत देश के किसान अपने जमीन को माँ कहते हैं, क्योंकि यही जमीन उनकी आजीविका का स्रोत है और वह भी पुश्त-दर पुश्त। यह बेचने-खरीदने की चीज नहीं मानी जाती है। लेकिन मजबूरी में लोग इसे बंधक रखकर काम चला लेते हैं। कभी-कभी सूदखोर-महाजनों के हाथों जमीन छिन भी जाती है। लेकिन पूरे परिवार का एक ही उद्देश्य दशकों तक चलता रहता है कि कैसे उस छीनी गयी जमीन को वापस पाया जाये। विकास तो किसान भी चाहते हैं लेकिन अभी जो विकास चल रहा है वह तो किसानों के लिए और देश के लिए विनाश है। आज खेत कम होते जा रहे हैं, बचे खेत बंजर होते जा रहे हैं और किसान आत्महत्यायें कर रहे हैं। बेरोजगारी बढ़ती जा रही है। उद्योग-कृषि-आधारभूत संरचना में तालमेल नहीं है। खेत देश को खिलाते हैं और "विकास" खेत को खाये जा रहा है। दुनिया भर में भोजन की सुरक्षा का प्रश्न एक गंभीर मसला बन गया है। खासकर झारखंड समेत भारत जैसे देश के लिए तो और भी जहाँ के 80 प्रतिशत लोग लगभग बहुत मुश्किल से गुजारा करने को मजबूर हैं।

भारत देश में 1999–2000 तक कुल जमीन का मात्र 54.30 प्रतिशत ही कृषि कार्य के व्यवहार में था। देश में 22.55 प्रतिशत जमीन जंगल के लिए निर्धारित है। देश में कुल कृषि योग्य जमीन 16.6 करोड़ हेक्टेयर हैं, जिसमें सिंचित भूमि 5.7 करोड़ हेक्टेयर है यानी 34 प्रतिशत मात्र। लेकिन इस कृषि प्रधान देश की किसी भी सरकार या कियी भी पंचवर्षिय योजना ने सिंचाई को देश की आधारभूत संरचना का हिस्सा नहीं बनाया। देश की जनसंख्या वृद्धि के साथ-साथ जितना उत्पादन बढ़ना चाहिए वह नहीं बढ़ रहा है। यानी भोजन सुरक्षा का मामला भविष्य में और गहरा होने वाला है। आज दुनिया भर में पर्यावरण के संतुलन का संकट और गहरा गया है। भारत में भी उद्योगों-खदानों के चलते जंगल के बड़े हिस्से को नुकसान पहुँचा है। नदियां प्रदूषित हुई हैं। ऐसे में विकास के नाम पर जंगल को और नुकसान पहुँचाना उचित नहीं है, बल्कि इसका सख्ती से निषेध करना चाहिए। यानी कृषि भूमि और जंगल के क्षेत्र को छोड़कर लगभग 22 प्रतिशत जमीन हमारे पास बचती है। इसका भी बड़ा हिस्सा में नगर में अवस्थित है; गाँव की सामाजिक कुछ जमीन है, जिसमें

चारागाह, खेल मैदान, अखाड़ा इत्यादी आते हैं। फिर भी कुछ जमीनें बचती हैं, जहाँ हम जनहित में कुछ जमीन दे सकते हैं।

इस विधेयक में सरकार कहती है कि जनहित में जमीन अधिग्रहण करके या तो सरकार जमीन अपने पास रखेगी या निजी मालिकाना में भी जनहित के लिए दे सकती है। सरकार यदि सिंचाई के लिए डैम बनाती है, छोटे-छोटे गाँवों के लिए सड़क बनाती है, राष्ट्रीय राजमार्ग बनाती है, सरकारी अस्पताल-शिक्षा संस्थान बनाती है तो इसे जनहित में विकास कार्य माना जा सक्ता है। लेकिन किसी भी निजी मालिकाना वाली कंपनियों को अगर भूमि अधिग्रहण करके सौपा जाता है तो इसे जनहित में उठाया गया कदम नहीं कहा जा सकता है क्योंकि ऐसी कंपनियों का स्वार्थ देश या देश की जनता से नहीं जुड़ा है। उनका स्वार्थ सिर्फ और सिर्फ उनके मुनाफा से जुड़ा है। हम जानते हैं कि उदारीकरण की नीति के लागू होने के बाद से जो भी निवेश हो रहे हैं, उससे रोजगार का सृजन कम होता जा रहा है। जिन लोगों के पहले रोजगार थे भी वहाँ भी रोजगारों की संख्या कम कर दी गयी। औद्योगिक क्षेत्रों में छंटनी और बंदी के कारण लाखों कल-कारखाने बंद हो गये हैं और हजारों हजार बीमार पड़ गये हैं। और यह देश हित में नहीं है। इसलिए सरकार को चाहिये कि नये उद्योग खोलने के बदले पुराने उद्योगों को खोलने और बीमार उद्योगों को चलाने का प्रयास करे। इस विधेयक के द्वारा निजी कंपनियों के मुनाफा के लिए देशवासियों की संपत्ति और आय को न्योछावर करने के इरादे से सरकार बाज आये। इस तरह यह विधेयक भी 1894 के कानून की तरह ही है। इस विधेयक से भी देश का हित नहीं होने वाला है। यह निवेश को आमंत्रित करने और निजी कंपनियों के मुनाफा को बढ़ाने वाला विधेयक है। यह विधेयक विकसित देशों की महामंदी को दूर करने वाला विधेयक है।

सनद रहे कि दुनिया में चल रही महामंदी के इस दौर में तेल, खनिज पदार्थ, जंगल और जमीन का महत्व बढ़ गया है। महामंदी से उबरने के लिए विकसित देश इन कच्चे मालों की लूट कर रहे हैं। अगर हमें अपने इन धरोहरों को बचाना है तो इस विधेयक का विरोध करना होगा। झारखंड समेत पूरे देश के विस्थापन विरोधी आंदोलनकारियों को यह घोषणा करनी चाहिए कि हमें अभी कोई विस्थापन मंजूर नहीं। पहले अबतक के सारे विस्थापितों का पूर्ण पुनर्वास करो, खाली पड़ी अधिग्रहीत जमीनों को कानून सम्मत तरीके से उनके मालिकों को सौंपो; बंद कारखानों, खदानों को या तो खोलो या उस जमीन को वापस खेती के लायक बनाकर उनके मालिकों को सौंपो। और राष्ट्रीय पैमाने पर विकास के तरीके पर बहस आरम्भ करें।

राजदेव राजू चंद्रवंशी

सीएनटी एक्ट पर सरकार के अड़ियल रवैये पर गोष्ठी

सरकार सी एन टी एक्ट को लागू नहीं करने पर अड़ी हुई है। पिछले करीब एक साल से पूरे झारखंड में सरकार के इस अडियल रवैये का व्यापक विरोध हुआ। फिर भी सरकार जमीन हड़पखोरों के हित में अड़ी हुई है। सरकार के इस रवैये पर विचार-विमर्श करने के लिए 11 नवम्बर, 2011 को शहीद निर्मल भवन, सोनारी, में एक विचार गोष्ठी आयोजित की गयी। वाहिनी द्वारा आयोजित इस गोष्ठी का संचालन दिलीप वाहिनी, मदन मोहन तथा मंथन ने किया। सीताराम शास्त्री ने विषय प्रवेश किया। संगोष्ठी में अपने विचार रखने वालों में शामिल थे: रमेश हांसदा (झामुमो), शैलेन्द्र महतो (पूर्व सांसद), विमो (जेडीपी), बादल सिंह सरकार (भूषण विरोधी आंदोलन), गणेश शर्मा (सीपीआइ), शैलेन्द्र कुमार महतो (विस्थापन विराधी एकता मंच), फागु बास्के, भोला सिंह मुंडा, हरमोहन महतो, संग्राम, बहादुर सोरेन (माँझी परगना महाल), बनमाली महतो, मुकन्दर, दिलीप वाहिनी, कपूर बागी (वाहिनी) , कुमार चन्द्र मार्डी (गांव गणराज्य संघ)। इस अवसर पर बिरसा मुर्मू, कातेचंद टुडू, अर्जुन किस्कु, रामलाल हेम्ब्रम, शिशिर महतो, दीपक, बबलू मुर्मू, शीशीर महतो आदि उपस्थित थे।

सभी वक्ताओं ने एक स्वर से सीएनटी एक्ट पर सख्ती से अमल करने पर जोर दिया। सीएनटी एक्ट के उल्लंघन में सरकारी पक्ष, माफियाओं और निहित स्वार्थी तत्वों की भूमिका की निंदा की गयी। वक्ताओं ने यह भी कहा

शेष पृष्ठ 10 पर

'कब्जा करो वाल स्ट्रीट' क्या और क्यों?

अमेरिका के न्यूयार्क में दुनिया भर को लूटने वाली बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का मुख्य कार्यालय जिस सड़क पर है, उसे ही वाल स्ट्रीट कहते हैं। यह दुनिया भर की वित्तीय पूँजी का प्रतीक है। विदित हो कि विकसित देशों के नवयुवकों-नवयुवतियों को बेहद उपभोग करने की आदत डलवा दी गई थी ताकि मुनाफा बढ़ते रहे और इस तबका में व्यवस्था के प्रति कोई नाराजगी, गुस्सा न आये। लेकिन लगातार महामंदी से गुजरते रहने के कारण अब विकसित देशों में भी बेरोजगारी बढ़ने लगी, और कम्पनियों और बैंकों का दिवाला निकलने लगा। इन देशों में बेरोजगारों को खर्च करने के लिए बैंकों से कई-कई क्रेडिट कार्ड दिये जाते रहे हैं, जो अब सम्भव नहीं रहा। लेकिन लाखों-लाख करोड़ डालर की सहायता देकर बैंकों को बचाया गया, जिसका लाभ आम लोगों को नहीं मिला। इस नाराजगी को अरब देशों के आंदोलन की बसंती हवा ने विद्रोही तेवर में बदल डाला। आज यह आंदोलन अमेरिका के वाल स्ट्रीट से लेकर इटली, स्पेन, ऑस्ट्रेलिया, ब्रिटेन, जर्मनी, आयरलैण्ड होते हुए दुनिया के लगभग 90 देशों में फैल गया है।

बताया जाता है कि इसका कारण उपभोगवादी संस्कृति, आय से अधिक खर्च, परिवार का बिखराव, बचत का अभाव और गैर-बराबरी लगातार बढ़ते जाने में है। ब्रिटिश उप प्रधानमंत्री ने घर-बच्चे-भविष्य की चिंता को इसका कारण बताया है। कुछ ने इसका कारण उत्पादक पूँजी की भूमिका का बढ़ना बताया है। अमेरिका के अगले राष्ट्रपति प्रत्याशी हर्मन कैन ने इस आंदोलन को पूँजीपतियों के विरुद्ध खड़ा किया गया आंदोलन कहा है। कैन गुस्साकर कहते हैं कि वाल स्ट्रीट को क्यों कोसते हो? बैंकों को क्यों दोष दे रहे हो? तुम अमीर नहीं हो, तुम्हारे पास काम-धंधा नहीं है तो खुद को क्यों नहीं कोसते हो?

हकीकत में इस आंदोलन का स्वरूप अभी विश्व सामाजिक मंच (डब्लू.एस.एफ) की तरह है जिसकी घोषणा है कि 'इस भूमंडलीकरण का इंकार करो' और 'दूसरी दुनिया सम्भव है।' अर्थात पूँजीवाद तो ठीक है लेकिन पूँजी को इतनी स्वतंत्रता देना ठीक नहीं है जो अनियंत्रित होकर पूरी पूँजीवादी व्यवस्था को ही चौपट कर दे। इसलिए आंदोलनकारियों की घोषणा है कि 'नव-साम्राज्यवादी व्यवस्था को ध्वस्त करो,' 'कॉरपोरेट लालच को कुचल दो,' 'पूँजीवाद के खिलाफ नहीं, तानाशाही के खिलाफ,' इत्यादि।

पूँजीवादी व्यवस्था के पक्षधर अर्थशास्त्रियों में बहस चल रही थी कि किन नीतियों से इस संकट को दूर किया जा सकता है। जवाब में एक अर्थशास्त्री जॉन ने बताया कि 'लम्बे दौर में हम सब (हर नीति) मर जाते हैं।' जाहिर हो कि पूँजीवादी व्यवस्था में एक खास अंतराल में मुनाफा की होड़ में आम लोगों में बेरोजगारी का फैलना, खरीदने की क्षमता घटना और इस तरह आर्थिक संकट का आना तय है। आज बहस तेज हो रही है कि यह पूँजीवादी जनतंत्र या व्यक्तिगत सम्पत्ति के अधिकारों के साथ समाजवाद या वर्गविहीन साम्यवाद इस मानव समाज के लिए उपयुक्त होगा।

– शंकर नायक

पृष्ठ 9 का शेष

कि झारखंडी भावना को फिर से मजबूत कर, झारखंडी पहचान को नयी धार देकर ही जमीनें बचायी जा सकती हैं और झारखंडियों का सच्चा विकास हो सकता है।

इस संगोष्ठी से कुछ महत्वपूर्ण निष्कर्षों पर सहमति बनी है, जिन्हे सहभागियों ने अपने-अपने संगठन के स्तर से लगातार उठाने का संकल्प जाहिर किया है। अपनी जमीन को बचाने और सीएनटी एक्ट के संरक्षण के लिये कृषि विकास और ग्राम विकास की नीति को प्राथमिकता देने के लिए संघर्ष अनिवार्य है। सीएनटी एक्ट के तहत अपनी जमीन की वापसी की लड़ाई लड़ रहे लोगों को हर कोई यथासंभव सहयोग देगा। इन कानूनी संघर्षरत लोगों के सहयोग के लिए कार्यसमूह विकसित करने की कोशिश भी होनी चाहिए। 1964 के सर्वे सेटलमेंट को अमान्य कर 1981 के सर्वे को मान्य करने के फैसले को निरस्त करने के लिए दबाव बनाना होगा। 1908 के बाद के सबसे पुराने सर्वेक्षण के आधार पर ही जमीन की स्थिति का निर्णय करने और अन्य अंतरणों को अमान्य करने के लिए सरकार पर जनदबाव बनाना होगा। सीएनटी एक्ट के तहत संरक्षण प्राप्त समूहों के रैयतों को दूसरों के समान बैंक ऋण उपलब्ध कराने के लिए विशेष जनअभियान चलाया जाना जरूरी है। इसके लिए सरकारी आदेश पारित कराने, रिजर्व बैंक को ज्ञापन देने और बैंकों की उपेक्षा के खिलाफ विरोध कार्यक्रम जैसी कार्यवाहियों को अपने-अपने स्तर से चलाने का मनं भी सहभागियों में बना है।

-मंथन

गरीबी पर राजनैतिक खेल

भारतीय समाज में गरीबी को अभिशाप माना गया है। फिर भी आज निम्न मध्यम वर्ग तक गरीब होने के लिए जुगाड़ लगाते रहते हैं क्योंकि गरीबी का दस्तावेज लाल कार्ड रहने का मतलब है सस्ता अनाज, मुफ्त चिकित्सा और प्रखण्ड द्वारा मिलनेवाली कई योजनाओं का हकदार। एक समय जनवितरण प्रणाली के दुकानों से सस्ती दर में अनाज वगैरह सबों के लिए सुलभ था। धीरे-धीरे सरकार ने देश की जनता को बी.पी.एल (गरीबी रेखा के नीचे) और ए.पी.एल. (गरीबी रेखा के ऊपर) में बांट दिया क्योंकि देश के शासक वर्ग और विश्व की महाजनी शक्ति (विश्व बैंक और साम्राज्यवादी शक्तियाँ) ने आम लोगों पर सबसीडी (दाम में रियायत) द्वारा होने वाले खर्च को कम करके अपने मुनाफा को बढ़ाने का निर्णय ले लिया। देश के योजना आयोग और विश्व बैंक मिलकर बजट के आकार के अनुसार गरीबी रेखा के नीचे की संख्या को तय कर देते हैं। इसलिए प्रखंड स्तर पर जब बी.पी.एल. सूची में और लोगों को शामिल करने की बात होती है तो प्रखंड पदाधिकारी का जवाब होता है कि प्रखंड में बी.पी.एल. कोटा पूरा हो गया है, इससे ज्यादा नाम शामिल करने के लिए जिला पदाधिकारी से बात करना होगा। जिला पदाधिकारी बोलेंगे कि सरकार जब तक कोटा नहीं बढ़ाती वे कुछ नहीं कर सकते।

सर्वविदित है कि अब तक सरकार के पास कई तरह के आँकड़े थे। ये तीनों सरकार के द्वारा बनायी गयी कमिटियों की रिपोर्ट थे जिनमें तेंदुलकर कमिटि ने बी.पी. एल. के तहत 37.2 प्रतिशत लोगों को जगह दिया, योजना आयोग ने सिर्फ 27.5 प्रतिशत को ही बी.पी.एल. के अंदर माना, जबकि डॉ. अर्जुन सेनगुप्ता ने 77 प्रतिशत को सिर्फ 20 रुपया में नित्य दिन गुजारा करने वाली आबादी के रूप में चिन्हित किया। झारखंड में तो मात्र 14 रुपये में अपना दिन गुजारने वाले आबादी की संख्या 80 प्रतिशत से भी अधिक है। सवाल है कि इसके बाद भी योजना आयोग ने बी.पी.एल. में इतनी कम संख्या को ही क्यों और कैसे चिन्हित किया? उत्तर साफ है कि शरीर के हिसाब से कोट नहीं बनाया गया, बल्कि कोट के हिसाब से शरीर को काँटा-छाँटा गया।

गरीबी रेखा के मापदंड का इतिहास बताता है कि सर्वप्रथम इस रेखा की स्थापना 1962 में की गई। 1960–61 में यह माना गया कि जो गाँव में 16 रुपये और शहर में 20 रुपया से ज्यादा मासिक खर्च करने की क्षमता रखते थे, उनको गरीब नहीं माना जायेगा। 2011 में योजना आयोग के अनुसार शहरी क्षेत्र में प्रतिदिन 32 रुपया 50 पैसा और ग्रामीण क्षेत्र में प्रतिदिन 26 रुपया 30 पैसा खर्च करने वाला व्यक्ति गरीब नहीं है। यानी अगर मान्यता आधारित 5 लोगों के एक परिवार की मासिक आमदनी शहरी क्षेत्र में 4875 रुपया और ग्रामीण क्षेत्र में 3945 रु. है तो वे गरीब नहीं माने जायेंगे। यह मापदंड 1961 की तुलना में 50 गुना अधिक है। इसका एक बड़ा कारण है कि सरकार अब कल्याणकारी राज-व्यवस्था से पीछे हट रही है।

गरीबी के संबंध में संयुक्त राष्ट्र संघ और विश्व-बैंक कहता है कि मूल रूप से विकल्पों और मौकों का अभाव ही गरीबी है। भोजन, कपड़ा, घर, चिकित्सा, शिक्षा, रोजगार, स्वच्छ जल, साफ-सफाई, जमीन और अभिव्यक्ति का अभाव ही गरीबी है। विश्व बैंक ने 2008 में यह माना कि 1.25 डॉलर से कम पर रोजाना आजीविका चलाने वाले लोग घोर गरीबी की चपेट में हैं। दुनिया में इनकी संख्या 140 करोड़ है। वही 2 डॉलर से कम पर आश्रित लोग मध्यम गरीबी के शिकार हैं। ऐसे लोगों की संख्या 270 करोड़ है। अनुमानतः पूरे दुनिया की आबादी 7 अरब के लगभग है। विश्व बैंक के अनुसार विश्व की लगभग दो तिहाई आबादी का बाजार-उत्पादन-रोजगार प्रभावित होता रहेगा और यह व्यक्तिगत संपत्ति आधारित और मुनाफा केन्द्रित व्यवस्था बार-बार आर्थिक मंदी के दौर-से गुजरने को मजबूर होगा।

अमेरिका में गरीबी रेखा का निर्धारण 1963–64 में किया गया था। वहाँ भोजन पर आने वाले खर्च की तीन गुनी राशि को गरीबी रेखा की सीमा माना गया। 1995 में कोपेनहेगन में आयोजित सामाजिक विकास दर विश्व सम्मेलन में संयुक्त राष्ट्र के घोषणापत्र में गरीबी मापने के लिए 8 बुनियादी आवश्यकताओं में से किन्ही दो के अभाव

की दशा में व्यक्ति को गरीब माना जायेगा। ये 8 बुनियादी आवश्यकताएं हैं: भोजन, सुरक्षित पेय जल, स्वास्थ्य, आवास, साफ-सफाई, शिक्षा, सूचना और सेवाओं की पहुँच।

भारत सरकार आर्थिक और जातिगत जन गणना-2011 की जारी प्रक्रिया के द्वारा गरीबी के नए मापदंड को गढ़ने का प्रयास कर रही है। इसके तहत जो परिवार घर विहीन, निराश्रित व भिक्षुक, मैला ढोने वाले, आदिम जनजाति समूह के या कानूनी रूप से मुक्त बंधुआ मजदूर हैं, उन्हें स्वतः बी.पी.एल. माना जायेगा। जनगणना में जिनके पास निम्न सुविधाएँ उपलब्ध पायी जायेंगी उन्हें गरीब नहीं माना जाएगा। जिसे मोटर चालित दो पहिया से चार पहिया तक का वाहन या मछली पकड़ने वाली नाव या मशीन चालित तिपहिया कृषि उपकरण या 50 हजार का किसान क्रेडिट कार्ड, या सरकारी नौकरी वाला परिवार या सरकार में पंजीकृत गैर कृषि उद्योग वाला परिवार, या 10 हजार रुपया प्रति मास से अधिक कमाने वाला परिवार या आयकर अदा करने वाला, या व्यवसायिक कर अदा करने वाला, या जिनके पास 3 कमरों की पक्की दिवारें और छत के मकान या रेफ्रिजरेटर या लैंड लाइन फोन या सिंचाई उपकरण के साथ 2.5 एकड़ सिंचित भूमि, या दो फसली 5 एकड़ सिंचित भूमि, या एक सिंचाई उपकरण के साथ कम से कम 7.5 एकड़ भूमि जैसे 14 मानक शामिल हैं। उक्त दो स्तरों के अतिरिक्त इस जनगणना में 7 अन्य मापदंडों का भी जिक्र है जिनमें सबसे कम आयवाले परिवार को बी.पी.एल की सूची में शामिल करने के लिए प्राथमिकता दी जायेगी। इसी मापदंड में सरकार बजट के आधार पर बी.पी.एल सूची को नियंत्रित करने की जगह बनाया है। इस मापदंड में कच्ची दीवारों व कच्ची छत के साथ एक कमरे में रहने वाला परिवार जिसमें 16 से 59 वर्ष के बीच की आयु का कोई वयस्क सदस्य नहीं है, निःशक्त सदस्य और किसी समर्थ शरीर वाले वयस्क सदस्य से रहित परिवार, अनुसूचित जाति अथवा अनुसूचित जनजाति परिवार, 25 वर्ष से अधिक आयु का कोई वयस्क निरक्षर परिवार, और भूमिहीन परिवार जो अपनी ज्यादातर कमाई दिहाड़ी मजदूरी से प्राप्त करता हो शामिल है।

हमारे देश में एक ओर अरबपतियों और करोड़पतियों की संख्या बढ़ती जा रही है और दूसरी ओर गरीबों की संख्या भी बढ़ती जा रही है। साम्राज्यवादी भूमंडलीकरण के बाद से भोजन, चिकित्सा और शिक्षा बहुत महंगी हो गयी हैं। इसके पहले शिक्षा-चिकित्सा का भार सरकार उठाती थी। लेकिन अब उस पर होने वाले खर्च को काटकर उस पैसे को पूँजी निवेश को सुगम बनाने में लगा दिया गया है। कृषि क्षेत्र में किसानों को मिलने वाले छूट (सबसीडी) को समाप्त कर बड़ी पूँजी के हित में कृषि लागत को महंगा किया जा रहा है। कृषि उत्पाद और वन उत्पाद की खरीद बिक्री तथा वायदा कारोबार और बड़ी पूँजी के प्रवेश के कारण भी खाद्य पदार्थों के दाम में बेताहाशा वृद्धि हुई है। शिक्षा और चिकित्सा का व्यवसायीकरण करके इस सेवा को महंगा कर दिया गया है। विकास के नाम पर ग्रामीण क्षेत्रों में विस्थापन और शहरी क्षेत्रों में अतिक्रमण हटाओ के नाम पर मेहनतकशों को उजाड़ने से आजीविकाएं छिन रही हैं। सभी कारणों से गरीबी रेखा के नीचे की संख्या बढ़ते जा रही है।

वर्तमान विकास के पैमाने को बदलकर, भूमि सुधार, कृषि क्षेत्र में बड़ी पूँजी पर रोक, शिक्षा-चिकित्सा के व्यवसायीकरण पर रोक, सिंचाई को आधारभूत संरचना में शामिल करके जल-जंगल-जमीन व विकास कार्य एवं शिक्षा-चिकित्सा केन्द्रों पर ग्रामसभा को अधिकार देकर गरीबी रेखा के नीचे की संख्या को कम किया जा सकता है।

शर्मनाक बात यह है कि किसी भी रंग की सरकार को जनता के बदले कंपनी की फिक्र है। जनता के रहन-सहन के विकास के बदले सरकार को विकास दर और पूँजी निवेश की चिंता है। इसलिए सरकारों को किसानों के विस्थापन-आत्महत्यायें, मजदूरों की छंटनी, उद्योगों की तालाबंदी और बढ़ती बेरोजगारी एवं मंहगाई की कोई चिंता नहीं है। सरकार तो बस केवल कंपनियों के मुनाफा को बढ़ाने के लिए चिंतित रहती है। जबतक पूँजी-कंपनी-मुनाफा केन्द्रित नीति नहीं बदली जाती तब तक गरीबों की संख्या को कम नहीं किया जा सकता है। अर्थात पूंजी के भूमंडलीकरण के विरुद्ध श्रमिकों के भूमंडलीकरण के संघर्ष को आगे बढ़ाना होगा।

- शंभु महतो

डॉ. रामदयाल मुण्डा का योगदान

डॉ. रामदयाल मुण्डा झारखण्डी संस्कृति के जीता-जागता प्रतीक थे। मानवीय गुणों से ओत-प्रोत, धीर-गंभीर, विनम्र, निर्भीक, खालिस ईमानदार, आदिवासी-मूलवासी की सुरक्षा और विकास के लिए आजीवन प्रयत्नशील रहे महामानव डॉ. मुण्डा देश-विदेश में झारखण्ड का झण्डा बन गये थे। हर समय घर या फोन पर उपलब्ध उनकी वह विनम्र भरोसेमंद आवाज अब हम झारखण्डवासी नहीं सुन पायेंगे। डॉ. मुण्डा को प्रकृति, संस्कृति और झारखण्ड के लोगों से बेहद प्यार था। झारखण्ड में आज भी मुण्डा साहब या मुण्डा जी के नाम से अगर कोई जाना जाता है तो वह डॉ. रामदयाल मुण्डा ही हैं। झारखण्ड आन्दोलन में मुण्डाजी का बड़ा योगदान रहा है।

मुण्डाजी को कुमार सुरेश सिंह ने अमेरिका से वापस हिन्दुस्तान बुलाकर रांची विश्वविद्यालय में आदिवासी भाषाओं के विकास का जिम्मा लेने का आग्रह किया। मुण्डाजी ने आदिवासियों के साथ-साथ मूलवासियों की भाषा को भी एक साथ जोड़कर 'जनजातीय-क्षेत्रीय भाषा विभाग' की परिकल्पना के साथ झारखण्ड की सर्वमान्य संस्कृति की ओर झारखण्ड आन्दोलन को छलांग लगवा दिया। आगे चलकर इस भाषा विभाग के प्रथम बैच के छात्रों और शिक्षकों ने मिलकर झारखण्ड आन्दोलन की संकीर्णता को तोड़ने में अहम भूमिका निभायी। निश्चित रूप से इसके रूपकार मुण्डा जी और उनके सहयोगी थे। देखते ही देखते यह भाषा विभाग आन्दोलन का केन्द्र बन गया। और अब हर आदिवासी समूह के साथ-साथ मूलवासियों का हर समुदाय झारखण्ड आन्दोलन का अंग बन गया। प्रथम बैच के विद्यार्थियों की अगुवाई में ही झारखण्ड के छात्र-युवाओं को एकजुट करके आजसू का निर्माण करना संभव हुआ था। मुण्डाजी के नेतृत्व में ही झारखण्ड आन्दोलन को बौद्धिक आधार प्रदान किया गया। और इस तरह झारखण्ड के आन्दोलनकारियों, सामाजिक कार्यकर्ताओं, बुद्धिजीवियों के लिए मुण्डाजी बरगद का पेड़ बन गये थे। ऐसा लगता है कि सरकार ने सोच-समझकर ही आन्दोलन से दूर करने के लिए उनको प्रोवीसी और वाईस चांसलर बना डाला। कुछ भी हो, मुण्डाजी को कोई भी पद या ओहदा उनके स्वभाव और झारखण्ड आन्दोलन के प्रति लगाव को बदल नहीं सका। वे तो नख से बाल तक आदिवासी थे, अहं से दूर, मानसिक श्रम से शारीरिक श्रम को छोटा नहीं समझने वाले सच्चे अर्थ में इन्सान थे।

जब झारखण्ड आन्दोलन दूसरे दौर में प्रवेश कर गया, सरकार बात करने को तैयार हो रही थी, उस वक्त आन्दोलन में मतभेद उभरने लगे थे। आन्दोलन की सशक्त आवाज थी कि झारखण्ड अलग प्रांत से कम कुछ भी स्वीकार नहीं होगा। दूसरा मत यह था कि उस वक्त की राजीव सरकार स्वायत्त परिषद दे सकती है, अतः अभी उस पर आन्दोलनकारियों को राजी हो जाना चाहिए। मुण्डाजी भी स्वायत्त परिषद के पक्ष में थे। मुण्डाजी के प्रयास से ही राजीव सरकार ने उच्च स्तर का सीओजेएम का गठन किया। सीओजेएम की रिपोर्ट पहुंचते-पहुंचते राजीव सरकार चली गई। इस कमिटी ने तीन सुझाव दिये थे। पहला तो बृहत प्रांत के ही पक्ष में था लेकिन उसे उस वक्त अव्यावहारिक बताया गया। दूसरा, सिर्फ झारखण्ड के वर्तमान क्षेत्र को स्वायत्त परिषद बनाने का सुझाव था जिसे व्यावहारिक बताया गया। तीसरा, बृहत सांस्कृतिक झारखण्ड क्षेत्र को मिलाकर सांस्कृतिक विकास के लिए एक कमिटी के गठन का सुझाव था। इसी रिपोर्ट के आधार पर बाद के दिनों में झारखण्ड क्षेत्र स्वायत्त परिषद का रास्ता साफ हुआ। उस वक्त लगा कि मुण्डाजी शासन व्यवस्था को समझते हैं और व्यावहारिक बात को ही मुण्डाजी बोल रहे थे।

उन दिनों आंदोलनकारियों, बुद्धिजीवियों को यह समझ हो गयी थी कि अब झारखण्ड आन्दोलन को सांस्कृतिक आन्दोलन ही आगे ले जा सकता है और जिस आंदोलन की अगुवाई के लिए मुण्डाजी से अच्छा व्यक्तित्व दूर-दूर तक कोई नहीं दिख रहा था। लेकिन मुण्डाजी सक्रिय राजनीति में कूदने के लिए तैयार हो रहे थे। मुण्डाजी के बारे में यह धारणा आम थी और जो सही भी था कि मुण्डाजी सीधे-सच्चे इन्सान हैं, आज के इस शासक वर्ग की तिकड़मी राजनीति में टिक नहीं पायेंगे। इसलिये उनके जैसे बौद्धिक और सांस्कृतिक समझवाले व्यक्ति को सांस्कृतिक आंदोलन की ही अगुवाई करनी चाहिए। उस वक्त तक मुण्डाजी ने अपना रास्ता तय कर लिया था। उनकी समझ थी कि हमारा आदमी लड़कर कुछ हासिल नहीं कर सकता; लेकिन लड़ाई को वे जरूरी भी मानते थे, ताकि सरकार बाध्य होकर बात करने के लिए

निमंत्रण दे। वे समझते थे कि टेबुल टॉक से दुनिया के बड़े-बड़े मसले हल होते रहे हैं, यहां भी सरकार में बैठे लोगों को समझा-बुझाकर झारखण्ड के लिए भी कुछ हासिल किया जा सकता है। इसी समझ के साथ ही उनके राजनीतिक जीवन का आरम्भ जेपीपी से होकर जेएमएम होते हुए कांग्रेस जा पहुंचा। इससे एक निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि उन्हें वर्ग संघर्ष में विश्वास नहीं था। पहले वर्ग संघर्ष की राजनीति वाली लालझण्डा पार्टियों को मुण्डाजी शंका की दृष्टि से देखते थे, परंतु धीरे-धीरे उनके प्रति सम्मान भी बढ़ रहा था क्योंकि पूरे देश में जहां भी आदिवासी समुदाय हैं, वहां-वहां लाल झण्डाधारी संघर्षशील हैं।

सच्चाई यही है कि वे शासक वर्ग की पार्टी में शामिल भी हुए तो अपनी जनता के लिए कुछ करने के उद्देश्य से, न कि और नेताओं की तरह अपनी सम्पत्ति को बढ़ाने के लिए। मुण्डाजी की मृत्यु के बाद भी उनके कुछ शुभचिंतकों को यह कसक रह गई कि काश मुण्डाजी सांस्कृतिक आन्दोलन की कमान ही संभाले होते तो झारखण्ड का ज्यादा भला होता। मुण्डाजी को भी अंत समय इस बात की चिंता थी कि अगर उन्हें पांच साल का और समय मिल जाता तो टैगोर हिल को पूर्वी भारत का सांस्कृतिक केन्द्र बना पाते और हर गांव में अखड़ा का निर्माण कर सांस्कृतिक आन्दोलन का आरम्भ कर पाते। उनकी समझ थी कि औपनिवेशिक काल का सबसे बड़ा हमला पूर्वी भारत पर हुआ जिसके चलते पूरे देश में आज भी पूर्वी भारत सबसे पिछड़ा है। इस पिछड़ेपन के कारणों की खोज के लिए भी वे टैगोर हिल को केन्द्र कर काम करना चाहते थे। मुण्डाजी व्यापक सोच वाले व्यक्तित्व रहे, उन्होंने कभी भी संकीर्णता की धारा में अपने आप को बहने नहीं दिया।

उनके असमय निधन से झारखण्ड और देश के उत्पीड़ित जमातों को काफी क्षति हुई है। डॉ. मुण्डा जैसे महामानव को कभी भुलाया नहीं जा सकता है। उनके बड़े-बड़े सोच जो जनहितार्थ के कामों के लिए अधूरे रहे गये हैं, उसे पूरा करने की दिशा में आगे बढ़कर ही उन्हें सच्ची श्रद्धांजलि दी सकती है।

– शंभु महतो

विस्थापन पर सरकार, एच.ई.सी. प्रबंधन और शासक वर्ग की पार्टियों का पोल खुला

हाल के दिनों में एच.ई.सी क्षेत्र के विस्थापितों द्वारा जन सुनवाई के लिए खुला अदालत का आयोजन किया गया। इस जन सुनवाई में भाजपा, कांग्रेस, झा.विकास मोर्चा, झा.मु.मोर्चा, आजसू, सी.पी.आई., सी.पी.एम, सी.पी.आई (एम.एल), सी.पी.आई.(एम.एल)-लिबरेशन के नेतृत्व से लेकर और राँची के महापौर एवं उपमहापौर तक बतौर जज भाग ले रहे थे। जनता के प्रश्नों के सामने सत्ता के पक्ष और विपक्ष की शासक वर्गों की पार्टियों की नीतियों का भंडाफोड हो गया। मालूम हो कि एच.ई.सी. के लिए 7,300 एकड़ भूमि अधिगृहीत की गई थी। लेकिन सिर्फ 3500 एकड़ जमीन ही एच.ई.सी. अपने काम में लगा पायी। अर्थात् 3800 एकड़ अनुपयुक्त जमीन प्रबंधन के पास रह गयी। लेकिन प्रबंधन के अनुसार इसमें से अनी, मुइमा, कूटे, लेबाद, तिरील और जगन्नाथपुर गाँवों की मात्र 315.75 एकड़ जमीन पर अतिक्रमण है। प्रबंधन को पैसा चाहिए, जिसके लिए वह जमीन बेचना चाहती है। जनता का प्रश्न यह है कि इस जमीन पर पहला अधिकार तो भूमि अधिग्रहण कानून के तहत विस्थापित किये गये किसानों का है लेकिन उच्च न्यायालय, सरकार और प्रबंधन जमीन नहीं लौटाना चाहते हैं। ऐसा क्यों? दूसरा प्रश्न है कि जब प्रबंधन ने ही निर्माण के समय वर्तमान अतिक्रमणकारियों को बसाया, उसे पानी, बिजली, राशन कार्ड, वोटर कार्ड दिये तो वे अतिक्रमणकारी कैसे हो गये? तीसरा प्रश्न है कि प्रबंधन अगर आर्थिक संकट में है तो हम "अतिक्रमणकारियों" से पैसा लेकर जमीन क्यों नहीं दे देती? चौथा प्रश्न है कि केन्द्र और झारखण्ड सरकार में शामिल पार्टियाँ भी जब इन "अतिक्रमणकारियों" को विस्थापित नहीं होने देने का आश्वासन देती हैं तो इनकी सरकारें क्यों नहीं इस 315.75 एकड़ अतिक्रमित जमीन का दाम प्रबंधन को दे देती हैं? पांचवा प्रश्न यह था कि सरकार जब आम लोगों के लिए भात-कपड़ा और मकान की जिम्मेवारी नहीं लेती है तो हमें अपने तरीके से की गयी व्यवस्था को भी क्यों छीन लेना चाहती है? छठा प्रश्न था कि जब सोवियत रूस से सिर्फ दो पंचवर्षीय योजनाओं के बाद आम लोगों के लिए रोटी-कपड़ा-मकान की व्यवस्था हो गई थी तो भारत में 11 पंचवर्षीय योजनाओं के बाद भी आम लोग इससे क्यों मरहूम है?

अतः मामला साफ है कि इस जमीन को बड़े पूँजीवाले को देने की तैयारी है। बाकी सब तो बहानाबाजी है।

– जसवा कच्छप

एन.एच.-33 का चौड़ीकरण जनहित में या जन-विरोधी

एन.एच.-33 (हाइवे 33) को चार लेन और छः लेन बनाने की योजना है। बरही से ओरमाँझी राँची तक काम लगभग पूरा हो चुका है। एन.एच 33 बरसात से खराब होना शुरू हुआ। बड़े-बड़े गड्ढे बने। मरम्मत का काम नहीं होने के कारण गड्ढे और भी बड़े और गहरे हो गये हैं। सरकार एन.एच. चौड़ीकरण के लिए प्रयासरत है लेकिन अब तक मरम्मत न होना दुर्भाग्य की बात है। हालांकि कुछ-कुछ जगह सड़क मरम्मत का काम हुआ है। पूरी तरह से सरकार और विभाग की लापरवाही है कि कुछ जगहों पर मरम्मत का काम नहीं हुआ। सड़क के विशाल गड्ढों को भरने के लिए मिट्टी, फ्लाइएश और स्लैग का उपभोग किया गया है जिसके परिणामस्वरूप सड़क पर धूल से अंधेरा छाया रहता है। आम आदमी का आना-जाना भी मुश्किल हो गया है।

वैसी परिस्थिति में सरकार पर यह प्रश्न चिन्ह है कि बनाये जा रहे चार लेन और छः लेन कब तक और कितने लम्बे समय तक टिकाऊ होगा। सड़क बनाते समय गुणवत्ता पर ध्यान नहीं दिया जाता है। भारी वाहनों का आवागमन बहुत ज्यादा है। वर्तमान समय में इनकी संख्या में काफी बढ़ोत्तरी हुई है। भारी वाहन अवैध रूप से ओवरलोड चलते हैं जिससे राजस्व का हानि होती है। यह धंधा लौह अयस्क की ढुलाई में सबसे ज्यादा है।

एन.एच.-33 के चौड़ीकरण की चपेट में शहर के बड़ी-बड़ी इमारतों से लेकर गाँव के घर भी आ रहे हैं। एक बार फिर विस्थापन का दर्द झेलना पड़ेगा। ग्रामीण क्षेत्र में बड़ी इमारतें नहीं हैं। इसलिए वहाँ पहले काम शुरू कर दी गयी है। शहर में कई जगह विरोध का भी स्वर उठ रहा है। वहाँ तोड़ने से भी परेशानी हो सकती है।

चौड़ीकरण से हजारों की संख्या में सड़क के किनारे पेड़ भी काटे जायेंगे। पेड़ काटना तो आसान काम है और फटाफट काट दिये जा रहे हैं। विभाग की यह जिम्मेदारी होनी चाहिए कि कम से कम जितने पेड़ काटे जायें उतने पेड़ जरूर लगाये जायें।

एन.एच.ए.आई. ने अपना मर्जी के अनुसार नक्शा बनाया। ग्रामीण क्षेत्र में 50 फीट में से एक ही ओर 40–45 फीट ले रही है। इससे कुछ लोगों की बहुत ज्यादा भूमि जा रही है। कुछ ऐसे भी लोग थे जो सड़क किनारे अपनी थोड़ी-सी जमीन की व्यवस्था करके अपना व्यवसाय चलाते हैं। एक ही ओर ज्यादा लेने से भूमि पूरी तरह जमीन से हाथ धोना होगा। दी जा रही मुआवजा की राशि इतनी कम है कि सड़क किनारे जमीन नहीं खरीदी जा सकती है।

जमशेदपुर के शहरी क्षेत्र वार्ड नं. 8, 9, और 10 में अंतिम सर्वे सेटेलमेंट 1981 में हुआ था। इससे पूर्व में 1964 सर्वे सेटेलमेंट हुआ। उस सर्वे के अनुसार जो आदिवासियों और मूलवासियों की जो रैयती जमीन थी वह भी 1981 के सर्वे सेटेलमेंट में गैर-आदिवासियों एवं बाहर से आए हुए लोगों के नाम से खतियान बनाकर उसमें डाल दी गयी। इस तरह हाल के सर्वे में कई जगह पूर्व सर्वे के अनुसार रैयती भूमि को अवैध दखल और गैर-मजरुआ एवं वन भूमि आदि के नाम से खतियान बनाया गया। 1981 के सर्वे के बारे में ज्यादातर भू-स्वामी अनभिज्ञ रहे। सरकार ने कागजी काम कार्यालय में बैठकर ही किया, सर जमीन पर अधिकारी नहीं गये।

ग्रामीण क्षेत्र में 1964 में अंतिम सर्वे हुआ था। तब ज्यादातर लोग अशिक्षित थे। कागजात को महत्व नहीं देते थे। गाँव में दखल ही सर्वमान्य होता था। 1964 के बाद सर्वे सेटेलमेंट क्यों नहीं किया गया? लंबा समय बीत जाने से जमीन की प्रकृति में स्वाभाविक रूप से बदलाव आया है। लगातार के प्रयास के बावजूद भू-स्वामी के रूप में दी जाने वाले कागजात से रैयतों को वंचित रहना पड़ा। किसान कागजात नहीं होने पर भी निश्चिंत होकर खेती करते आ रहे थे, लेकिन अब एन.एच.-33 के चौड़ीकरण के लिए अधिग्रहण हो रहा है और कागजात को ही मान्यता दिया जा रहा है। सरकार पहले के सर्वे में गड़बड़ी और अब दखल को नजरअंदाज कर रही है। इस धांधली द्वारा सैकड़ों लोगों की भूमि मुफ्त में ही लेने की योजना बनायी गयी है। अवैध दखल और गैर-मजरुआ जमीन में यदि घर बनाया गया है तो उसका मुआवजा दे रही है, यानी वैसे मामले को स्वीकार करती है कि घर बनाने में

पैसा और श्रम लगा है। फिर अवैध दखल और गैर-मजरुआ जमीन के खेतों के लिए मुआवजा देने के लिए तैयार क्यों नहीं है?

पूर्वी सिंहभूम में एन.एच.-33 का चौड़ीकरण करने की अधिसूचना 2010 में जारी हुई। उस समय ग्रामीण क्षेत्र की भूमि के लिए मुआवजा का दर 8000–12000 रु० प्रति डिसमिल जबकि शहरी क्षेत्र में ८६००० रु० प्रति डिसमिल तय की गयी है। शहरी और ग्रामीण क्षेत्र में मुआवजा की दर निश्चित रूप से आश्चर्यचकित करता है कि दोनों क्षेत्रों के बीच में इतना ज्यादा अंतर क्यों है। एन.एच. किनारे भूमि व्यवसाय के लिए उपयुक्त है चाहे ग्रामीण क्षेत्र ही क्यों न हो। बाजार दर के आधार पर भी देखा जाए तो इसमें बहुत ही कम अंतर है। सरकार ने मुआवजा की दर में अंतर को कम करने के लिए कोई प्रयास नहीं किया। और न ही बाजार दर के अनुसार मुआवजा देने के लिए पहल की गयी।

मानगो अधिसूचित क्षेत्र समिति वार्ड नं. 10 के अंतर्गत ग्राम बालीगुमा आता है, यानी शहरी क्षेत्र में। इसी गाँव से सटा हुआ देवघर पंचायत ग्रामीण क्षेत्र में आता है। दोनों क्षेत्रों को देखने से कोई अंतर दिखता ही नहीं है। ग्रामीण क्षेत्र में दिये जा रहे मुआवजे की वास्तविक बाजार दर फिर से निर्धारित करने की जरूरत है ताकि रैयतों के साथ न्याय हो सके।

इन समस्याओं से अवगत कराने के बाद भी सरकार एवं प्रशासन ने अब तक पहल नहीं की। अंचलाधिकारी ने अवैध दखल और गैर-मजरुआ भूमि एन.एच.ए.आई. को हस्तांतरण करने के लिए जिला प्रशासन के माध्यम से स्वीकृति के लिए अनुशंसा मंत्रिमंडल को भेज दी है। इस संबंध में कभी ग्रामसभा से परामर्श नहीं किया गया। ऐसे कई गंभीर सवाल और समस्याएं हैं जिन पर सरकार अब तक मौन है। और दूसरी ओर अधि ग्रहण की प्रक्रिया जारी है।

झारखंड मुक्ति वाहिनी 2010 से ऐसी समस्याओं को लेकर गंभीर है। कई बार प्रशासन और सरकार को पत्र देकर ध्यान आकृष्ट करने का प्रयास किया गया। अब ऐसा लगता है कि सरकार बिलकुल गंभीर नहीं है। अगर कुछ आश्वासन देती भी है तो उसे झूठा समझना चाहिए। ऐसी परिस्थिति में विकल्प के रूप में जन आंदोलन ही हो सकता है। ग्रामीणों की ओर से उच्च न्यायालय राँची में पी.आई.एल. भी दायर की गयी है।

– मदन मोहन

झारखण्डी देशज समुदाय की विलुप्ति और बुद्धिजीवी समूह की खामोशी का प्रश्न

ख्यातिप्राप्त विद्वानों, मानव वैज्ञानिकों, इतिहासकारों तथा आधुनिकतम शोध-निष्कर्षों से यह बात प्रमाणित होती जा रही है कि यहां का देशज समुदाय न केवल झारखण्ड के जंगलाच्छादित पठारी क्षेत्र बल्कि भारतीय उपमहाद्वीप का भी प्रथम मानव समूह है। इन्हें ही कालान्तर में प्रोटो-ऑस्ट्रोलॉएड या दक्षिण देशीय मानव प्रजाति के नाम से चिन्हित किया गया, जिसके अन्तर्गत झारखण्ड की रक्षणशील संथाल, मुण्डा, उराँव, हो, खड़िया, बिरहोर, असुर, भील आदि उपनृवंशीय समूह शामिल समझी जाती हैं। अब प्रजातियों के निर्धारण में भाषायी तत्व की अपेक्षा रक्त विश्लेषण प्रणाली, जीनोम विविधता परियोजनाओं आदि को अधिक महत्व दिया जाने लगा है और डॉ० बी० एस० गुहा के प्रजातीय अध्ययन के निष्कर्षों के बाद नित्य हो रहे मानव वैज्ञानिक शोधों से भी यह प्रमाणित होने लगा है कि भले ही उराँव समूह द्रविड़ भाषा परिवार से संबंधित हैं, मगर प्रजातीय तत्व की दृष्टि से वे प्रोटो-ऑस्ट्रोलॉएड मानव समूह के अंतर्गत आते हैं। संभवतः इसीलिये डॉ० बिमला चरण शर्मा, श्री जगदीश त्रिगुणायत, श्री जयदेव दास 'अभिनव' जैसे विद्वानों ने इन्हें प्रोटो-ऑस्ट्रोलॉएड या दक्षिण देशीय मानव समूह के अंतर्गत ही रखने का प्रस्ताव किया है। एक समय इसी मानव प्रजाति ने विभिन्न संस्कृति कालों में कई विकसित सभ्यताओं और संस्कृतियों के निर्माण में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

द्रष्टव्य है कि आदिमानव के प्रजातीय रूपान्तरण के पश्चात सभी मुख्य प्रजातियाँ जनसंख्या की दृष्टि से लगभग समान थीं। कालान्तर में विभिन्न बाह्य एवं आंतरिक कारणवश अन्य मानव प्रजातियों की अपेक्षा इसी दक्षिण देशीय मानव

प्रजाति की जनसंख्या में तेजी से कमी आती गयी और आज स्थिति यह है कि किसी समय का विशाल-विकसित मानव समूह आज मुख्यतः झारखण्ड तथा अन्य अलग-थलग पड़े क्षेत्रों के देशज समुदाय के रूप में ही बचा प्रतीत होता है। यहाँ भी राज्य-स्तरीय, राष्ट्रीय-अंतरराष्ट्रीय स्तरों सहित, सरकारी-गैरसरकारी कई प्रत्यक्ष सुरक्षात्मक उपायों के बावजूद वे निरन्तर विलुप्ति की राह में ही अग्रसर हैं। डर है कि यदि यही प्रक्रिया चलती रही तो निकट भविष्य में इनका नामो-निशान मिटते देर नहीं लगेगी। इसे निर्विवाद माना जाना चाहिए कि प्रगतिशील मानव-समूह नयी-नयी बातों को जल्द ही अपनाते हैं और स्वयं को भी पारिस्थितिक परिवर्तनों के अनुरूप ढाल लेता है, दूसरी ओर रक्षणशील मानव-समूह इन बातों को रोकती हैं और खुद को भी इन परिवर्तनों से बचाये रखने का प्रयास करती हैं। चार्ल्स डार्विन के उद्विकासीय सिद्धान्त के पश्चात यह एक स्थापित वैज्ञानिक सत्य है कि जो प्रजाति पारिस्थितिक परिवर्तनों की दृष्टि से अनुकूलन की प्राप्ति नहीं करेगी, कालक्रम में उसका विलुप्त हो जाना तय है।

देशज समुदाय के विलुप्ति की ओर अग्रसरता के लिये निःसंदेह कई बाहरी कारक जिम्मेवार हैं पर आंतरिक कारक भी कम जिम्मेवार नहीं हैं। आज भी देशज समुदाय अपने हजारों-लाखों वर्ष पूर्व की परम्परागत रूढ़िवादी और बहुत कुछ बेकार हो चुकी अवधारणाओं में ही जकड़ा नजर आता है। आज के वैज्ञानिक युग में भी यहाँ डाइन-चुरिन, भूत-प्रेत, ओझा-मती, जादू-टोना जैसे तर्क विहीन विश्वास विद्यमान हैं और इसी की आड़ में आये दिन नरबलि, दिल, फेफड़ा, कलेजी, भेजा निकालकर खा लेने जैसी भयावह, नृशंस और घोर अमानवीय कृत्य देखने-सुनने को मिलते रहते हैं। कहने को तो देशज समुदाय समतामूलक व्यवस्था पर आधारित है पर यहाँ भी सभी परम्परागत सामुदायिक संसाधनों पर पुरुषों का अधिकार हो गया है। सर्वविदित है कि अंग्रेजों के आने से पहले मूल रूप से जल, जंगल, जमीन जैसे जीविका के संसाधनों पर देशज समुदाय का किली (गोत्र) आधारित सामूहिक मालिकाना हक हुआ करता था लेकिन अंग्रजों ने 1793 ई० के स्थायी बन्दोबस्ती कानून के तहत देशज समुदाय को रैयत बना डाला। तब सर्वे के द्वारा जमींदारी व्यवस्था और पुरुष प्रधान व्यवस्था ने मालिकाना दस्तावेज, पट्टा-खतियान में देशज पुरुषों का नाम दर्ज कर उन्हें भूमि खरीदने-बेचने का अधिकार सौंप दिया। इस तरह अब भूमि ने सम्पत्ति का रूप ले लिया है और परम्परा की आड़ में स्त्रियों यानी समुदाय की आधी आबादी को अधिकार विहीन कर बहूद्देशीय-बहूपयोगी पण्य में परिवर्तित कर दिया गया है, जो अपनी तथा अपने परिवार की जीविका एवं अस्तित्व को बचाये रखने के लिये दर-दर की ठोकरें खाने को मजबूर हैं। पलायन करना तो जैसे इनकी नियति ही बन गई है।

इन सब से मुक्ति एवं विकास की राह में आगे आने के लिये समुदाय के नेतृत्व में वैज्ञानिक सोच एवं समतामूलक विकासवादी व्यवस्था में आस्थावान सचेतन एवं बुद्धिजीवी समूह को आना होगा। यह समूह इन सारी स्थितियों से अवगत भी है परन्तु बहुत संभव है कि घृणित हो चुकी वर्त्तमान राजनीतिक व्यवस्था की वजह से नेतृत्व का बीड़ा उठाने के लिये सामने नहीं आना चाहता है। देर तो हो रही है फिर भी बचे-खुचे लोगों को ही सही पूरी तरह अस्तित्व विहीन होने से बचाने के लिये इन्हें तटस्थता का रूख छोड़ना होगा, खामोशी तोड़नी ही होगी, नहीं तो आने वाले इतिहास में इनकी विलुप्ति के अन्यान्य कारकों में इसे भी निश्चित रूप से दर्ज किया जायेगा। इसी तरह यदि देशज ही विलुप्त हो जायेंगे तो इनसे संबंधित विभिन्न मुद्दों का अस्तित्व ही क्या रह जायेगा? जल, जंगल, जमीन, भाषा, संस्कृति आदि मुद्दों को उठाने का औचित्य ही क्या रह जायेगा? अतः बुद्धिजीवी समूह को विलुप्तिकरण की समस्या के विभिन्न कारकों और निदान के संभावित उपायों के साथ आम झारखण्डी देशज समुदाय से जुड़ना ही होगा, नहीं तो एक समय के समृद्ध-विकसित ये मानव समुदाय आने वाले दिनों में सिर्फ किस्से-कहानियों में ही मिला करेंगे।

रिमिल प्रिया
स्नातकोत्तर, प्राचीन इतिहास
जमशेदपुर

संपूर्ण झारखण्ड गठन से हल होगा बंगला-उड़िया का सवाल

झारखण्ड में इन दिनों भाजपा और मुख्यमंत्री अर्जुन मुंडा द्वारा क्षेत्रीय और स्थानीय मुद्दों को लेकर एक सस्ती लोकप्रियता की राजनीति चलायी जा रही है। झारखण्डी भाषाओं के साथ बंगला और उड़िया को द्वितीय राजभाषा का दर्जा देने की घोषणा करना भी इसी की एक कड़ी है। यह एक स्वार्थपूर्ण एवं सकीर्ण राजनीति है। दरअसल सत्ता और शासक वर्ग झारखण्ड में विवाद और विभाजनकारी राजनीति को बनाये रखना चाहते हैं ताकि जनता का असली एजेंडा और राजनीतिक धारा और असली जन संघर्ष झारखण्डी जनमानस या जनतंत्र से गायब हो जाये या हाशिये पर चला जाये। इसमें कुछ बुद्धिजीवी और तथाकथित झारखण्डी-आदिवासी हितैषी लोग मोहरा बन रहे हैं।

दरअसल संसदीय उप-चुनाव में सत्ताधारी भाजपा की जमशेदपुर सीट की हार के बाद से ही सुनियोजित तरीके से यह राजनीति शुरू की गयी क्योंकि जमशेदपुर झारखण्ड की औद्योगिक राजधानी है। राज्य की सत्ता में और पार्टी के मुख्यमंत्री रहते हुए इस महत्वपूर्ण सीट की हार से भाजपा को एक झटका लगा। वे इस प्रयास में लगे हैं कि झारखण्ड में अपने खिसकते जनाधार को कैसे बचाया जाये तथा आदिवासियों-झारखण्डियों और अन्य लोगों के बीच जनाधार कैसे बढ़ाया जाये।

इसी प्रयास में कुड़ुख़, संथाली, मुण्डारी, हो, खड़िया, बंगला और उड़िया को भी द्वितीय राजभाषा बना दिया गया लेकिन इससे झारखण्ड में भाषा-विवाद उत्पन्न हो गया है जिस पर अखबारों में लगातार बहस और बयानबाजी चल रही है। एक तरह से झारखण्डी और आदिवासी समाज में एक विवाद और विभाजन का बीज बोया जा रहा है। इस तरह से यह भी झारखण्डी समाज को बांटने और कमजोर करने की राजनीति है।

बंगला और उड़िया को झारखण्ड में द्वितीय राजभाषा बनाने के पीछे मुख्यमंत्री अर्जुन मुण्डा का निजी स्वार्थ है। वे जमशेदपुर लोकसभा सीट और खरसंवां विधानसभा सीट को आगे के लिए भी अपने या अपनी पार्टी भाजपा के लिए सुनिश्चित कर लेना चाहते हैं क्योंकि जमशेदपुर और पूरे पूर्वी सिंहभूम क्षेत्र के प्रायः सभी लोग बंगला भाषा बोलते हैं। उसी तरह से सरायकेला-खरसंवां और पश्चिम सिंहभूम में अन्य लोगों के साथ आदिवासी लोग उड़िया भी बोलते हैं। इसलिए वे इस पूरे क्षेत्र को खुश कर अपने राजनीतिक मकसद को पूरा करना चाहते हैं। इसमें भाजपा का पूरा समर्थन है। बंगला और उड़िया क्षेत्र से आने वाले अन्य झारखण्डी नेताओं में भी इसका विरोध नहीं है। इसीलिए बंगला और उड़िया को लेकर झारखण्ड सर्वदलीय बैठक और विधान सभा में प्रस्ताव पारित कर दिया गया। बंगला का प्रभाव लगभग पूरे संथाल परगना और धनबाद-बोकारो क्षेत्र में है। इसे संथाल परगना के नेता शिबू सोरेन भी जानते हैं। अतः सवाल बंगला और उड़िया के विरोध का नहीं है, सवाल है कि संपूर्ण झारखण्ड का सवाल कैसे हल होगा?

संघर्ष और जद्दोजहद के बाद फिलहाल सरकार ने पांच प्रमुख आदिवासी भाषाओं सहित चार क्षेत्रीय भाषाओं को द्वितीय राजभाषा का दर्जा तो घोषित कर दिया, परन्तु इन भाषाओं को लेकर ठोस या जमीनी स्तर पर कोई काम नहीं किया है। झारखण्ड अलग राज्य के बाद सरकार सिर्फ घोषणाएं ही कर रही है। सरकार ने अभी तक मातृभाषाओं में पढ़ाई शुरू नहीं की है और उसके लिए शिक्षकों की नियुक्ति भी नहीं की गयी है। बच्चों को आदिवासी भाषाओं में किताबें उपलब्ध नहीं करायी जा रही हैं। अब तक इन भाषाओं के लिए भाषा अकादमियों का गठन नहीं किया गया है। रांची विश्वविद्यालय के क्षेत्रीय एवं जनजातीय भाषा विभाग का बुरा हाल है। महाविद्यालयों में इन भाषाओं के शिक्षकों की नियुक्ति नहीं की गयी है। सरकार आदिवासी-झारखण्डी भाषाओं में अध्यादेश, आदेश-निर्देश, परिपत्र और सरकारी सूचनाएं क्यों जारी नहीं करती है? इसके लिए इन भाषाओं के अनुवादकों या जानकारों की नियुक्ति क्यों नहीं की जाती है? सिर्फ किसी भाषा को द्वितीय राजभाषा घोषित कर देने से ही उस भाषा का उद्धार नहीं होगा। उसे ठोस रूप में हर स्तर से लागू करना होगा।

अतः आदिवासी-झारखण्डी भाषाओं के लिए चिंतित लोगों को इन भाषाओं को जमीनी स्तर पर लागू

कराने, इनके विकास के लिए काम करने और इन भाषाओं का प्रयोग अधिक से अधिक करने पर जोर देना चाहिए। ज्यादा उचित है कि बंगला और उड़िया के विवाद के चक्कर में न पड़कर सभी झारखण्डी जनता और नेताओं को मिलकर संपूर्ण झारखण्ड की मांग हेतु फिर से आन्दोलन करना चाहिए। इसके लिए माहौल बनाना और समर्थन जुटाना चाहिए क्योंकि देश की आंतरिक उपनिवेशवादी नीति के तहत झारखण्ड के कुछ आदिवासी जिलों को बंगाल, उड़ीसा और छत्तीसगढ़ में मिला दिया गया है। झारखण्ड के इन पड़ोसी राज्यों में झारखण्डी आदिवासी बंगला, उड़िया और छत्तीसगढ़ी के साथ-साथ कुड़ुख़, मुण्डारी, संथाली, भूमिज, हो, खड़िया, सादरी आदि भी बोलते हैं। इन क्षेत्रों के लोगों और वहां के नेताओं के साथ संपूर्ण यानी बृहद (ग्रेटर) झारखण्ड के लिए समर्थन जुटाना चाहिए। अगर संपूर्ण झारखण्ड की मांग को स्वीकृति मिलती है तो बंगला और उड़िया को स्वाभाविक रूप से यहां सम्मान मिलेगा।

जो लोग झारखण्डी-आदिवासी के अस्तित्व और जमीनी मुद्दों को दरकिनार कर सिर्फ झारखण्ड की भाषा-संस्कृति और साहित्य की बात कर रहे हैं, उन्हें समझना होगा कि अगर झारखण्डी और आदिवासी जन ही नहीं रहेंगे तो उनकी भाषा-संस्कृति कहां रहेगी? हमारी भाषा-संस्कृति भी तभी बचेगी जब हम और हमारी भूमि एवं प्राकृतिक संसाधन बचेंगे जिन पर आज देशी-विदेशी कम्पनियों का चौतरफा हमला हो रहा है। देश की राष्ट्रीय और झारखण्डी शासक पार्टियां इस चीरहरण में कम्पनियों के साथ खड़ी हैं।

किसी भाषा को राजभाषा बनाने का मतलब होता है उस भाषा में सरकारी काम-काज करना या चलाना जबकि किसी भाषा को द्वितीय राजभाषा बनाने का मतलब है सरकार द्वारा उस भाषा का संरक्षण एवं विकास। हालांकि द्वितीय राजभाषा का प्रयोग भी सरकारी काम-काज या शिक्षा-दीक्षा में हो सकता है। सवाल है कि झारखण्ड में किन भाषाओं को संरक्षण एवं विकास की दरकार है। क्या बंगला और उड़िया को किसी प्रकार के संरक्षण की जरूरत है? बंगला-उड़िया भाषा-भाषी क्षेत्र में उनके बच्चों के लिए उनकी भाषा में पढ़ाई और सरकारी काम-काज में उस भाषा का प्रयोग हो सकता है। इसके संरक्षण और विकास की जरूरत नहीं है।

बृहत झारखण्ड के गठन से झारखण्ड की भाषा-संस्कृति, उत्पीड़ित राष्ट्रीयताओं की मुक्ति सहित कई आर्थिक-राजनीतिक सवालों के हल के लिए भी रास्ते खुलेंगे। बृहत झारखण्ड सिर्फ कल्पना की बात नहीं है। इसके लिए यह सभी आवश्यक राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय मानदंडों या आधारों को पूरा करता है। यह देश के संवैधानिक और सैद्धांतिक स्तर पर भी खरा उतरता है। भारत में भाषा और सांस्कृतिक भूगोल के आधार पर किसी क्षेत्र या कुछ क्षेत्रों को मिलाकर अलग राज्य का गठन किया जा सकता है। इस समूचे इलाके के लोगों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति, रहन-सहन, जीवन-शैली, भाषा, संस्कृति और भौगोलिक संरचना एक जैसी है। बृहत झारखण्ड के गठन से झारखण्डियों की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक शक्ति बढ़ेगी। इतना ही नहीं, बृहत झारखण्ड के गठन से सांस्कृतिक, राजनीतिक और विकास की दृष्टि से एक नया मॉडल स्टेट बन सकता है। यह तब होगा जब हम देशी-विदेशी कम्पनियों के खिलाफ संघर्ष करते हुए भूमि सुधार पर जोर देंगे।

अतः झारखण्डियों-आदिवासियों को बृहद झारखण्ड हेतु संघर्षरत रहना चाहिए। पुरखों के बृहद झारखण्ड के सपने और 1948 के खरसंवां गोली कांड के सैंकड़ों शहीदों को याद करना चाहिए जो उस क्षेत्र को उड़ीसा में मिलाने के विरोध में जमा हुए थे। झारखंडी भाषाओं के सवालों को बृहद सांस्कृतिक झारखण्ड के दायरे में देखना और सुलझाना चाहिए।

-जेवियर कुजूर

झारखंड के खनिजों की लूट और जनशताब्दी एक्सप्रेस का इंतजाम

1991 में देश में वैश्वीकरण और उदारीकरण पर आधारित एक नयी आर्थिक नीति चलायी गयी है और देश की अर्थ-व्यवस्था को बहुराष्ट्रीय कंपनियों तथा निजी पूंजीपतियों के लिए पूरी तरह खोल दिया गया। भारत सरकार और कुछ दूसरे लोग कह रहे हैं कि इस नयी आर्थिक नीति के चालू हो जाने के बाद देश का खूब विकास हो रहा है। इस विकास का एक नमूना का यहां पेश है।

2001 में भारत से सिर्फ 358 करोड़ रुपए का लोहा (लौह अयस्क) निर्यात होता था। यह बढ़कर 2008–09 में 21,725 करोड़ रुपये हो गया, यानी सात साल में 60 गुना। इसको सरकार विकास कहती है।

आइए देखें यह कैसा विकास है और किसका विकास है। लौह अयस्क का बाजार मूल्य करीब 5000 रु० प्रति टन रहा है। 2007 तक इससे सरकार को 27 रु० प्रति टन रॉयल्टी मिलती थी। इतनी कम रॉयल्टी पर जब चारों तरफ से सवाल खड़े किये गये तो सरकार ने दो साल तक खूब सोच-समझकर उसे 60 रु० प्रति टन कर दिया। निर्यात करने वाले व्यवसायी को मजदूरी, परिवहन, रॉयल्टी आदि मिलाकर कोई 450 रु० का खर्च पड़ता था। बाकी करीब 4500 रु० शुद्ध मुनाफा। ना, नहीं ! इस मुनाफे से उस बेचारे को मंत्री से लेकर पुलिस के सिपाही तक बहुत सारे लोगों को घूस भी देना पड़ता है। कितना देना है, यह कहना तो कठिन है। जितने लौह अयस्क का खनन कानूनन प्राप्त वैध पट्टे वाले खान से होता है उसका कई गुना अधिक माल अवैध खनन से व्यवसायी निकालकर ले जाता है। यह तो हुआ विकास से होने वाला फायदा। अब देखें नुकसान क्या-क्या होता है।

बड़े पैमाने पर स्थानीय लोगों का विस्थापन होता है। हजारों एकड़ जंगलों से पेड़ काटकर जमीन को गढ़ों में तबदील कर दी जाती है। लौह अयस्क की धूल से हवा, पानी और मिट्टी बुरी तरह प्रदूषित होती है जिससे फसल और वनों की वनस्पति बुरी तरह प्रभावित होती है। लोगों को गंभीर बीमारियां होती हैं। वन भूमि और रैयती भूमि के नष्ट होने से स्थानीय लोगों की आजीविकाएं छिन जाती हैं, भले ही थोड़े दिनों के लिए इस लूट के माल को खोदने और गाड़ी पर चढ़ा देने के लिए उनको थोड़ी मजदूरी मिल जाये। देश की दुबारा पैदा नहीं होने वाली कीमती खनिज संपदा देश के बाहर चली जाती है। बेहद कम रॉयल्टी लेने के कारण सरकार को राजस्व की भारी क्षति होती है।

इस लूट से फायदा सिर्फ खनन व्यवसायी और घूसखोरों को होता है। यह तो निश्चित है कि व्यवसायी लूट के पैसे को झारखंड के विकास में तो नहीं लगायेंगे, बल्कि लूटने की अपनी क्षमता को बढ़ाने में करेंगे।

इस लूट को आसान बनाने के लिए भारत सरकार ने कोलकाता से खनन क्षेत्र तक जन शताब्दी एक्सप्रेस चला दी। ऐसे अविकसित दूरदराज के ग्रामांचल में जनशताब्दी को आपने कहीं नहीं देखा होगा। जाहिर है मुख्यतः इसे इन्हीं लौह अयस्क लूट व्यवसायियों की सेवा के लिए चलायी गयी है। जन शताब्दी एक्सप्रेस चालू करना साबित करता है कि यह लूट का कार्यक्रम बाकायदा केंद्र सरकार की देखरेख में पूर्व नियोजित था। यह गाड़ी स्थानीय जनता के परिवहन के लिए नहीं लगायी गयी। इस इलाके में जमशेदपुर से गुवा और बड़बिल तक एक-एक सवारी गाड़ी है जिनमें बड़ी भीड़ होती है। स्थानीयों के लिए गाड़ियां बढ़ाने के बदले लौह अयस्क की लूट की सुविधा के लिए सरकार ने जन शताब्दी एक्सप्रेस चलाना ज्यादा जरूरी समझा जिसका भाड़ा बहुत कम ही स्थानीय लोग चुका सकते हैं।

अंत में हम केन्द्र सरकार के हाथों में खनिजों की मालिकाना को चुनौती देते हैं। पहली बात तो यह है कि गंगा घाटी और दूसरी सदानीरा नदी घाटियों के निवासी जनता को वहां की जलोढ़ मिट्टी का पूरा फायदा मिलता है जिससे वे साल भर भरपूर फसल पाते हैं। तो सवाल है कि झारखंड और अन्य पहाड़ी एवं वनक्षेत्रों के निवासियों को क्यों नहीं अपने अन्य प्रकार के, यानी वन एवं खनिज संसाधनों का पूरा फायदा मिले। दूसरी बात यह है कि सरकार इन संसाधनों का उपयोग जन हित में नहीं करती बल्कि नगण्य रॉयल्टी या कीमत पर सीधे पूंजीपतियों को दे देती है। इसलिए जन हित में न्यायोचित यही है कि खनिजों और वन संसाधनों की मालिकाना सामूहिक रूप से स्थानीय क्षेत्रों के हाथ में रहनी चाहिए। इसके लिए झारखंड और दूसरे क्षेत्रों को संघर्ष करना होगा। पहले तो खनिजों की इस लूट को तत्काल रोकना होगा।

– सीताराम शास्त्री

कार्यालय : द्वारा मंथन, सामुदायिक विकास के पीछे, ग्वाला बस्ती, पो.: इन्द्रानगर, टेल्को, जमशेदपुर - 831008
फोन : 9470392677, 9472687275 **मुद्रक : अनिता प्रिंटर्स**, 3/98, काशीडीह, साकची जमशेदपुर